इकाई 1 कुमाउनी भाषा का उद्भव एवं विकास

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 कुमाउनी भाषा का उद्भव
1.4 कुमाउनी भाषा का इतिहास- एक
1.5 कुमाउनी भाषा का इतिहास- दो
1.6 सारांश
1.7 शब्दावली
1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
1.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रत्येक समाज की अपनी भाषा होती है। कोई भी समाज उसकी भाषा से पहचाना जाता है। यही कारण है कि भाषा और समाज का गहरा संबंध है। कारण यह कि कोई भी भाषा उस समाज की ही उत्पत्ति होती है। स्पष्ट है कि मनुष्य का संबंध उसकी भाषा के माध्यम से ही समाज से जुड़ता है। अतः भाषा और समाज एक दूसरे को बनाते हैं, गतिशील करते हैं। भाषा एक ओर सम्प्रेषण का साधन है तो दूसरी ओर संस्कृति की वाहिका भी है। इसलिए भाषा का अपना संदर्भ भी जुड़ता चलता है। भाषा के अतीत व वर्तमान एक सांस्कृतिक ऐक्य के आधार पर एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। भाषा का इतिहास व उसका विकास क्रम एक सांस्कृतिक बोध भी उत्पन्न करते हैं। भाषा की प्राचीनता यह सिद्ध करती है कि किसी भाषा की लंबी विरासत व संस्कृति किस प्रकार समृद्ध रही है। कुमाउनी भाषा की भी अपनी सुदीर्घ परंपरा रही है। इस अध्याय में हम कुमाउनी भाषा की विकास परंपरा को पढ़ेंगे।

1.2 उद्देश्य

कुमाउनी भाषा एवं व्याकरण नांमक प्रश्न पत्र की यह द्वितीय इकाई कुमाउनी भाषा के उद्भव एवं विकास से संबंधित है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

- कुमाउनी भाषा के उद्भव को समझ सकेंगे।
- कुमाउनी भाषा की विकास प्रक्रिया को जान सकेंगे।
- कुमाउनी भाषा के इतिहास से परिचित हो सकेंगे।
- कुमाउनी के प्रमुख काल विभाजन को जान सकेंगे।
- कुमाउनी भाषा के प्रमुख साहित्यिक ग्रंथों का परिचय जान सकेंगे।

1.3 कुमाउनी भाषा का उद्भव

कुमाउनी भाषा का समृद्ध इतिहास रहा है। कुमाउनी भाषा के उद्भव के संदर्भ में दो मत प्रचलित रहे हैं। एक मत के अनुसार कुमाउनी भाषा का उद्भव दरद-खस प्राकृत से हुआ है। दूसरे मत के अनुसार सौरसेनी अपभ्रंश से कुमाउनी भाषा का विकास हुआ है। हम जानते हैं कि हिंदी भाषा की उत्पत्ति भी शौरसेनी अपभ्रंश से हुई है। कुमाउनी हिंदी भाषा की एक समृद्ध भाषा है। डॉ ग्रियर्सन, डॉ सुनीतिकुमार चटर्जी एवं डी डी शर्मा पहले मत के प्रशंसक रहे हैं। इस संबंध में विचार करते हुए ग्रियर्सन ने माना है कि कुमाउनी भाषा पर दरद भाषा के बहुत से अवशेष पाए जाते हैं। अतः ग्रियर्सन दरद भाषा से कुमाउनी भाषा का उद्भव मानते हैं। डॉ सुनीतिकुमार चटर्जी ने भी कुमाउनी भाषा का उद्गम पैशाची, दरद व खस प्राकृत को मानते हैं। चटर्जी ने कुमाउनी को राजस्थानी प्राकृत एवं अपभ्रंश से प्रभावित स्वीकार किया है। ग्रियर्सन व सुनीतिकुमार चटर्जी के समान ही डी डी शर्मा भी कुमाउनी का संबंध दरद से मानते हैं। किन्तु डॉ केशवदत्त रूवाली दरद से कुमाउनी की उत्पत्ति की धारणा को अस्वीकार करते हैं।

कुमाउनी भाषा की उत्पत्ति के संदर्भ में शौरसेनी अपभ्रंश का तर्क भी बहुत मजबूत है। बल्कि इस मत को मानने वालों के तर्क ज़्यादा मजबूत हैं। डॉ उदयनारायण तिवारी, डॉ केशवदत्त रूवाली व डॉ धीरेंद्र वर्मा कुमाउनी भाषा की उत्पत्ति शौरसेनी से मानने के पक्षधर रहे हैं। डॉ धीरेंद्र वर्मा मध्यकाल में कुमाउनी को राजस्थानी से प्रभावित मानते हैं तथा आधुनिक काल में हिंदी भाषा से। आज बहुत से विद्वान यह स्वीकार करते हैं कि कुमाउनी में बहुत सी भाषाओं के तत्व विद्यमान हैं; किन्तु कुमाउनी हिंदी भाषा में अपने को सर्वाधिक निकट पाती है। डॉ रुवाली कुमाउनी भाषा को दसवीं

शताब्दी से शौरसेनी अपभ्रंश से सम्बद्ध मानते हैं। कुमाउनी के शौरसेनी अपभ्रंश से सम्बद्ध होने के मत का समर्थन डॉ गोविंद चातक जी ने भी किया है। डॉ गोविंद चातक ने लिखा है-"मध्यदेशीय भाषा का प्रसार उत्तराखंड तक भी हो गया। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय आर्य भाषा के मध्यकालीन विकास में शौरसेनी प्राकृत और अपभ्रंश अनेक सीमाओं में बंध गई थी, पर हिमालय में उसने विकास का जो रूप लिया, वही मध्य पहाड़ी के उद्भव का कारण बन।" डॉ हरदेव बाहरी ने कुमाउनी के स्वरों की संरचना को कश्मीरी आदि दरद भाषाओं की तरह ही जटिल माना है तथा व्यंजन ध्वनियों को राजस्थानी के निकट माना है। एक मत कुमाउनी के संस्कृत संबंध का भी है। इस तर्क के अनुसार हिंदी भाषा की बोलियों की अपेक्षा कुमाउनी में संस्कृत के शब्द ज्यादा हैं। डॉ हरिशंकर जोशी भी इस तर्क से सहमत हैं कि वैदिक व लौकिक संस्कृत की मूल ध्वनियों को कुमाउनी ने सर्वाधिक सुरक्षित रखा है। अनुनासिक ङ जैसे वर्ण को कितना कुमाउनी ने सुरक्षित रखा है, उतना हिंदी की किसी अन्य भाषा ने नहीं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुमाउनी के मूल स्रोत को लेकर विद्वानों में मतैक्य नहीं है। इस मतभिन्नता का प्रमुख कारण यह है कि इसमें आर्य एवं आर्येतर भाषा के अनेक तत्व पाए जाते हैं। लेकिन यह भी सत्य है कि वर्तमान में साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक स्थितियों के कारण कुमाउनी भाषा पर हिंदी का प्रभाव बढ़ रहा है।

अभ्यास प्रश्न- 1

1. ग्रियर्सन ने कुमाउनी भाषा पर किसका प्रभाव माना है?

1.दरद 2.सौरसेनी 3.सिंधी 4.बांग्ला

2. कुमाउनी पर दरद का प्रभाव स्वीकार नहीं करते-

1. सुनीतिकुमार चटर्जी 2. धीरेन्द्र वर्मा 3. ग्रियर्सन 4. डी डी शर्मा

3. सौरसेनी अपभ्रंश से कुमाउनी का विकास माना है?

1. धीरेन्द्र वर्मा 2. उदयनारायण तिवारी 3. केशवदत्त रुवाली 4. उपर्युक्त सभी

1.4 कुमाउनी भाषा का विकास- एक

कुमाउनी भाषा की विकास यात्रा को समझने के लिए इसके लिखित व मौखिक दोनों प्रकार के स्रोतों की पड़ताल करनी होगी। कुमाउनी भाषा का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। वैसे किसी भी समाज का इतिहास उसकी भाषा के इतिहास से सीधे जुड़ा होता है और आप इसे अलग नहीं कर सकते। लिखित रूप में तो कुमाउनी भाषा के नमूने, उदाहरण अभिलेख, ताम्रपत्र 14 वीं सदी में मिलने लगते हैं। हालांकि कुछ इतिहासकार इस अवधि को 11 वीं सदी तक ले जाने के पक्षधर हैं। डॉ महेश्वर प्रसाद जोशी ने कुमाउनी भाषा में लिखित सर्वाधिक प्राचीन ताम्रपत्र खोजा है, जो सन 1105 ई का है। कत्यूरी शासन काल में कुमाउनी को राजभाषा की प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। किन्तु राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित होने से पूर्व भी कुमाउनी लोक में प्रतिष्ठित रही होगी या लंबे समय से लोक बोली के रूप में प्रचलन में रही होगी, इस बात में कोई संशय नहीं।

कुमाउनी भाषा के विकास में चंद्र शासन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। चंद्र शासनकाल के अनेक ताम्रपत्र में संस्कृत मिश्रित कुमाउनी के नमूने देखे जा सकते हैं। विद्वानों ने लक्षित किया है कि यह कुमाउनी ग्रामीणों द्वारा बोली जाने वाली भाषा से भिन्न रही होगी। ग्रामीण समाज का संपर्क अपेक्षाकृत सीमित रहने के कारण उनकी भाषा में बदलाव की प्रक्रिया पढ़े-लिखे व्यक्ति की अपेक्षा धीमी होती है। इस प्रकार कुमाउनी के परिनिष्ठित रूप से पहले व समानांतर लोक में कुमाउनी का एक रूप और चलता रहा होगा, इस संभावना से हम इंकार नहीं कर सकते।

कुमाउनी भाषा की विकास प्रक्रिया को समझने के लिए उसके काल-विभाजन को देखना उचित होगा। कुमाउनी के काल-विभाजन को मुख्यतः निम्न ढंग से समझा जा सकता है-

प्रारंभिक काल - 1100 ई से 1400 ई तक।
पूर्व मध्यकाल- 1400 ई से 1700 ई तक।
उत्तर मध्यकाल- 1700 ई से 1900 ई तक।
आधुनिक काल- 1900 ई से अब तक।
इस काल विभाजन के पश्चात अब हम कुमाउनी भाषा की विकास प्रक्रिया को विस्तार से समझने का प्रयास करेंगे।

प्रारंभिक काल (1100 ई से 1400 ई तक)

इस कालखंड के कुमाउनी भाषा के विकास को मुख्यतः शिलालेखों, ताम्रपत्रों तथा अन्य अभिलेखों के माध्यम से देखा जा सकता है। इस संदर्भ में सन 1344 ई, 1389 ई, 1404 ई के ताम्रपत्र को देखा जा सकता है। सन 1344 ई के ताम्रपत्र का एक नमूना देखें-

"श्री शाके 1266 मास भाद्रपद राजा त्रिलोकचंद रामचंद्र चम्पाराज चिरजुयतु पछमुल बलदेव चडमुह को मठराज दीनी।"

उपर्यक्त नमूने के आधार पर समझा जा सकता है कि कुमाउनी भाषा अपने बनने की प्रक्रिया में है। संस्कृत का प्रभाव शेष है।

पूर्व मध्यकाल (1400 ई- 1700 ई तक)

इस काल में कुमाउनी भाषा के स्वरूप में बहुत अंतर तो न आया किन्तु उसका परिमार्जन अपेक्षाकृत ज्यादा ही हुआ। इस काल में तद्भव एवं स्थानीय शब्दों का प्रयोग बढ़ने लगा। इस काल के अभिलेखों के कुछ नमूने 1446 ई, 1593 ई, 1664 ई में मिले हैं। सन 1664 ई का एक नमूना देखें-

"महाराजाधिराज श्री राजा बज बहादुर चंद्र देव ले तमापत्रक करि कुमाऊं का...को मठ दिनु हंस गिरि ले पायो मठ बीच जोगी न दिजि मछयो फिरि रामगिरि भकि दसनाम सन्यासीन दिनु।"

ऊपर के नमूने देखने से पता चलता है कि कुमाउनी में लोकप्रचलित शब्दों का प्रयोग बढ़ने लगा था। अभिलेख की भाषा अब लोक भाषा की ओर उन्मुख होने लगी थी।

उत्तर मध्यकाल (1700 ई - 1900 ई तक)

इस कालखंड में ऐतिहासिक घटनाओं में तेजी से परिवर्तन हुए। आधुनिक जीवन जगत की गति ने भाषा में भी परिवर्तन उपस्थित किये। कारण यह कि भाषा का सामाजिक गतिक्रम से घनिष्ठ संबंध है।

इस कालखंड में उत्तराखंड में चंद शासन का अंत हुआ। चंद शासन के उपरांत कुछ समय तक (1790 ई-1815 ई) गोरखा शासन रहा। किन्तु अंग्रेजों से पराजित होकर वे सत्ता से बेदख़ल कर दिए गए। इसके पश्चात उत्तराखंड पर अंग्रेजों का शासन रहा। इन सब घटनाओं का प्रभाव कुमाउनी भाषा पर भी पड़ा। चंद शासकों के मुगलों से संपर्क के कारण कुमाउनी भाषा में अरबी-फ़ारसी शब्दों का प्रयोग बढ़ा। इसी प्रकार गोरखा शासन व अंग्रेज़ी शासन के प्रभावस्वरूप नेपाली तथा अंग्रेजी भाषा के शब्द भी कुमाउनी भाषा में आये। इस सबसे कुमाउनी भाषा का विस्तार होता चला गया। जब तक चंद शासकों का राज्य रहा तब तक तो कुमाउनी को राजकीय संरक्षण भी प्राप्त होता रहा। इसी दौर में गुमानी, कृष्ण पांडे, शिवदत्त सत्ती आदि कुमाउनी के कवि हुए, जिन्होंने कुमाउनी को साहित्यिक दृष्टि से समृद्ध किया। इस कालखंड की कुमाउनी का एक नमूना देखें। यह नमूना 1892 ई का है। इस नमूने का उपयोग ग्रियर्सन ने अपने भाषा सर्वेक्षण में किया था। नमूना देखें-

"एक दिन वामदेव ऋषि राजा थैं आयो, और वीले कयो कि जसो च्योलो तू चांछिये तसो च्योलौ तेरो है गछ। अब यै कणि छयत्रिन जो काम छने करणो चैंछ। और लड़ै कर बेर ये कण मुलुक जितण चैनी। राजा ले मुनि की बात मानि ली। दिन बार करि बर, नौं कुमारन दगड़ी वीकणी आपण देश है भैर भेजो"।

अभ्यास प्रश्न 2

4- कुमाउनी भाषा का काल विभाजन करें।

5- कुमाउनी भाषा के मध्यकाल की भाषागत विशेषताएं वर्णित कीजिये।

1.5 कुमाउनी भाषा का विकास-दो

आधुनिक काल (1900 ई से आज तक)

इस कालखंड में राष्ट्रीय आंदोलन व स्वतंत्र भारत की राष्ट्रीय समस्याएं मुख्य रूप से प्रभावी भूमिका ग्रहण करती है। देश की आज़ादी का संघर्ष, कुमाउनी भाषी समाज का उसमें भाग लेना व विभिन्न आंदोलनों में हिस्सेदारी, यह भाषा के स्तर पर भी उसे व्यापक आधार देता है। हिंदी भाषा के ढेर सारे शब्दों के अलावा अंग्रेजी, फ़ारसी के अनेक शब्द कुमाउनी भाषा में घुलते-मिलते चले गए।

1.6 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों! इस इकाई में आपने कुमाउनी भाषा के विकास क्रम का अध्ययन किया। इस अध्ययन के पश्चात आपने जाना कि -

- कुमाउनी भाषा का इतिहास बहुत प्राचीन है। इसके इतिहास के प्राचीन श्रोत ताम्रपत्र व शिलालेख हैं।
- कुमाउनी भाषा के इतिहास को प्राचीन, मध्यकाल व आधुनिक कालक्रम में विभाजित किया गया है।
- प्राचीन कुमाउनी का रूप संस्कृत के प्रभाव से युक्त रहा है।
- मध्यकाल को पूर्व मध्यकाल व उत्तर मध्यकाल नांमक दो वर्गों में विभक्त किया गया है।
- आधुनिक काल तक आते-आते कुमाउनी भाषा ने अपने स्वतंत्र अस्तित्व का निर्माण कर लिया है। आज की कुमाउनी में पर्याप्त लोक साहित्य व परिनिष्ठित साहित्य मिलता है।

1.7 शब्दावली

दरद- खस प्राकृत का अपभ्रंश

सौरसेनी- सौरसेनी प्राकृत, जिससे हिंदी भाषा एवं कुमाउनी का विकास हुआ।

मतैक्य- एक ही मत को मानने वाले

अभिलेख-प्राचीन लिखित साक्ष्य

शिलालेख-पत्थर की शिलाओं पर लिखे लेख

ताम्रपत्र- तांबे पर दानपत्र, तांबे का पत्तर, जिसपर प्राचीन लिखित साक्ष्य मिले हैं।

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1- दरद

2- धीरेंद्र वर्मा

3- उपर्युक्त सभी।

1.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कुमाउनी भाषा का उद्भव एवं विकास तथा उसका भाषिक अध्ययन-प्रो देव सिंह पोखरिया, डॉ भगत सिंह, अंकित प्रकाशन

2. हिंदी की सहभाषा कुमाउनी, शेरसिंह बिष्ट, साहित्य अकादमी प्रकाशन

1.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. कुमाउनी हिंदी शब्दकोश-पालीवाल

2. हिंदी साहित्य कोश, भाग 1, संपादक डॉ धीरेन्द्र वर्मा

1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. कुमाउनी भाषा के काल विभाजन पर निबंध लिखें।

2. कुमाउनी भाषा के उद्भव को रेखांकित कीजिये।

3. कुमाउनी भाषा की विकास यात्रा को विस्तार से लिखें।

इकाई -2 कुमाउनी क्षेत्र की उपभाषाएँ एवं बोलियाँ

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 कुमाउनी भाषी क्षेत्र
- **2.3.1 पृष्ठभूमि**
- **2.3.2 कुमाउनी भाषी क्षेत्र**

2.4 कुमाउनी की उपभाषाएँ
- **2.4.1 उपभाषाएँ एवं क्षेत्र**

2.5 कुमाउनी की बोलियाँ
- **2.5.1 पश्चिमी कुमाउनी बोलियाँ**
- **2.5.2 पूर्वी कुमाउनी बोलियाँ**

2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
2.10 सहायक ग्रंथ सूची
2.11 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

कुमाउनी हिंदी प्रदेश की एक समृद्ध भाषा है। किसी भी समृद्ध भाषा की एक पहचान यह भी हो सकती है कि उसने अपनी बोलियाँ विकसित की हैं या नहीं। इस दृष्टि से कुमाउनी की उपभाषा व बोली दोनों समृद्ध हैं। भाषा का लंबा इतिहास, समृद्ध साहित्य, राष्ट्रीय गति में उस भाषा का अपना योगदान, ये कुछ अन्य महत्वपूर्ण तथ्य हैं, जिसके आधार पर उस भाषा की समृद्धता का हम मूल्यांकन कर सकते हैं।

उत्तराखंड का कुमाऊं परिक्षेत्र अपनी समृद्ध भाषाई संस्कृति के लिए ख्यात रहा है। यह परिक्षेत्र हिमालयी परिक्षेत्र रहा है। इस कारण उत्तराखंड को कुमाऊँ हिमालय तथा गढ़वाल हिमालय जैसे नामों से विभाजित कर दिया गया है। इस इकाई में हम कुमाउनी भाषा के अंतर्गत आने वाले उपभाषा व बोलियों का अध्ययन करेंगे।

2.2 उद्देश्य

कुमाउनी भाषा की उपभाषाएँ एवं बोलियाँ नांमक इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

- कुमाउनी भाषा के परिक्षेत्र को समझ सकेंगे।
- कुमाउनी भाषा के उपभाषाओं को जान सकेंगे।
- कुमाउनी भाषा की प्रमुख बोलियों से परिचित हो सकेंगे।
- कुमाउनी भाषा के उपभाषा व बोलियों के क्षेत्र से परिचित हो सकेंगे।
- कुमाउनी भाषा के उपभाषा व बोलियों की प्रकृति को समझ सकेंगे।

2.3 कुमाउनी भाषी क्षेत्र

2.3.1 पृष्ठभूमि

उत्तराखंड के पर्वतीय भू-भाग को मध्य हिमालय के नाम से अभिहित किया जाता है। मध्य हिमालय को भी दो भागों में विभक्त किया गया है। एक, कुमाऊँ हिमालय तथा दूसरे, गढ़वाल हिमालय। कुमाऊँ हिमालय की भौगोलिक स्थिति लगभग 28-51 से 30-49 उत्तरी अक्षांश तथा 77-43 से 81-31 पूर्वी देशांतर के मध्य स्थित है। कुमाऊँ हिमालय के उत्तर में तिब्बत, पूर्व में नेपाल, दक्षिण में मुरादाबाद,रामपुर, बरेली एवं पीलीभीत जनपद तथा पश्चिम में गढ़वाल जनपद के पौड़ी एवं चमोली जनपद स्थित हैं। कुमाऊँ परिक्षेत्र के अंतर्गत नैनीताल,अल्मोड़ा, पिथौरागढ़,, ऊधमसिंह नगर, बागेश्वर तथा चंपावत आते हैं। कुमाऊं के इस क्षेत्र को ही कुमाउनी भाषी क्षेत्र कहते हैं।

2.3.2 कुमाउनी भाषी क्षेत्र

कुमाउनी भाषी क्षेत्र को मानस खंड व उत्तर कुरु नाम से हुआ है। यहाँ पर विभिन्न जाति के लोगों ने शासन किया। इसका प्रभाव कुमाउनी भाषा व इसकी बोलियों पर देखा जा सकता है।

कुमाऊँ मंडल में मुख्यत: पाँच बोलियाँ बोली जाती हैं-1. कुमाउनी , 2. राजी, 3. भोटिया (शौका), 4. बुक्सा, 5. थारू। सुविधा की दृष्टि से एवं भाषाई वैविध्य को ध्यान में रखते हुए कुमाउनी को दो वर्गों में बाँटा गया है। 1- पूर्वी कुमाउनी व 2- पश्चिमी कुमाउनी।

पूर्वी कुमाउनी को 4 उपबोलियों में विभक्त किया गया है। ये उपबोलियाँ हैं- कुमय्यों, सोर्याली, सीराली, अस्कोटि।

इसी प्रकार पश्चिमी कुमाउनी की मुख्यतः 6 उपबोलियाँ मानी गयी हैं। ये 6 उपबोलियाँ हैं- खसपर्जिया, चौगर्खिया, गंगोली, वनपुरिया, पछाई, रौ चौबैंसी। इस प्रकार कुमाउनी भाषी क्षेत्र की ये मुख्य बोलियाँ मानी गयी हैं।

2.4 कुमाउनी की उपभाषाएँ

2.4.1 उपभाषाएँ एवं क्षेत्र

ऊपर हमने बताया कि दस बोलियों का समूह कुमाउनी के नाम से जाना जाता है। अल्मोड़ा में कुमाउनी भाषा का बड़ा केंद्र है। अनुसूचित जनजाति के अंतर्गत शौका या भोटिया (रङ्ग) बोली का प्रयोग किया जाता है। इनको ग़ैर-कुमाउनी भाषी लोगों के अंतर्गत परिगणित किया जाता है। अल्मोड़ा जनपद पश्चिमी कुमाउनी भाषी क्षेत्र के अंतर्गत आता है। खसपर्जिया इसकी प्रतिनिधि बोली है, जो अल्मोड़ा व उसके आस-पास के क्षेत्रों में बोली जाती है। खसपर्जिया को ही मानक कुमाउनी के रूप में मान्यता देने का आग्रह भाषा चिंतकों द्वारा किया जाता रहा है। अल्मोड़ा के पूर्व में पिथौरागढ़ ज़िला स्थित है। बोली की दृष्टि से पिथौरागढ़ ज़िले को दो भागों में बांटा गया है- 1-कुमाउनी भाषी क्षेत्र व 2- ग़ैर कुमाउनी भाषी क्षेत्र।

कुमाउनी भाषी क्षेत्र के अंतर्गत कुमाउनी की चार उपबोलियाँ बोली जाती हैं-1- कुमय्यों, 2- सोंयोलों, 3- सीराली तथा 4- अस्कोटी। ये सभी बोलियाँ पूर्वी कुमाउनी के अंतर्गत आती हैं। ग़ैर कुमाउनी क्षेत्र को तीन भागों में बाँटा जा सकता है-1 . जोहारी बोली क्षेत्र, 2 . रङ्ग बोली क्षेत्र , 3. राजी बोली क्षेत्र। मुनस्यारी क्षेत्र की जोहार घाटी में रहने वाली शौका जनजाति की बोली जोहारी कहलाती है। तथा धारचूला तहसील के दारमा, ब्यौन्स एवं चौनदौस क्षेत्र में रहनेवाले शौकाओं (भोटियों) की बोली रङ् कहलाती है। पिथौरागढ़ जनपद के धारचूला एवं डीडीहाट के अंतर्गत अनेक गांवों में निवास करने वाले राजी (वनरौत) जनजाति की बोली राजी कहलाती है।

नैनीताल ज़िले में मुख्यतः तीन बोलियाँ बोली जाती है- 1-कुमाउनी, 2- बुक्सा व 3-, थारु।

बुक्सा व थारु बोलियाँ यहां निवास करने वाली बुक्सा एवं थारू जन जातियों द्वारा बोली जाती है। अतः इन बोलियों को जनजाति बोली भी कहा जा सकता है। नैनीताल ज़िले में बोलियों के दो वर्ग चिन्हित किये गए हैं। कुमाउनी बोली वर्ग तथा जनजातीय बोली वर्ग। कुमाउनी बोली नैनीताल ज़िले के पर्वतीय क्षेत्रों में और नीचे के क्षेत्रों में बोली जाती है।

अभ्यास प्रश्न 1

1- उत्तराखंड के पर्वतीय भू भाग को किस नाम से अभिहित किया गया है?

क. मध्य हिमालय ख.पूर्व हिमालय ग. उत्तर हिमालय घ. दक्षिण हिमालय

2- कुमाऊँ मंडल में मुख्यतः हिंदी की कितनी बोलियाँ हैं?

क. 4 ख. 5 ग. 3 घ. 2

3- पूर्वी कुमाउनी की मुख्यतः कितनी उपबोलियाँ हैं?

क. 3 ख. 2 ग. 4 घ. 5

4- पश्चिमी कुमाउनी की कितनी उपभाषाएँ हैं?

क. 6 ख. 5 ग. 7 घ. 1

5- नैनीताल ज़िले में बोली जाने वाली बोली नहीं है?

क. बुक्सा ख. थारु ग. कुमाउनी घ. राजी

2.5 कुमाउनी की बोलियाँ

विद्यार्थियों! अभी तक आपने कुमाउनी की प्रमुख उपभाषाओं का अध्ययन किया। अब हम कुमाउनी की प्रमुख बोलियों का संक्षेप में परिचय प्राप्त करेंगे।

2.5.1 पश्चिमी कुमाउनी की बोलियाँ

खसपर्जिया- यह पश्चिमी कुमाउनी की बोली है। इस बोली को खासपर्जिया या ख़ासप्रजा भी कहते हैं। यह बोली मुख्यतः बारामंडल परगने में बोली जाती है। बारह मंडलों के सामूहिक क्षेत्र को ही बारामंडल कहा गया। अल्मोड़ा नगर में बोली

जाने वाली ख़सपर्जिया को ही परिनिष्ठित कहते हैं। तथा इसी क्षेत्र की कुमाउनी को ही परिनिष्ठित कुमाउनी भी कहते हैं। खसपर्जिया खास लोगों द्वारा बोली जाती है। कुछ लोग इसे खस जाति की बोली कहते हैं।

चौगर्खिया- चौगर्खिया बोली भी पश्चिमी कुमाउनी की बोली है। चौगर्खिया बोली का क्षेत्र काली कुमाऊं परगने का उत्तरी पश्चिमी भाग है। चार दिशाओं की ओर फैली हुई चार पर्वत श्रेणियों के कारण इस क्षेत्र को चौगखां कहा जाता है। एक जनश्रुति के अनुसार इस क्षेत्र में कभी गोरखा वीर रहा करते थे। इसलिए यह क्षेत्र चौगखां कहलाया। इसके पूर्व में रंगोड़ तथा पश्चिम में दारूण पट्टियां हैं। दक्षिण में सालम तथा पश्चिम में लखनपुर है।

इस क्षेत्र की बोली खसपर्जिया के अधिक निकट है। चौगर्खिया क्षेत्र खसपर्जिया, गंगोली, कुमय्यां तथा रौ-चौभैंसी से घिरा हुआ है। इस कारण इसका पश्चिमी क्षेत्र जहाँ खसपर्जिया से प्रभावित है, वहीं पूर्वी क्षेत्र में पूर्वी कुमाउनी की भी विशेषताएं मिलती हैं। डॉ त्रिलोचन पांडे ने चौगर्खिया को खसपर्जिया का पूर्वी विस्तार कहा है।

गंगोली या गंगोई- गंगोली पश्चिमी कुमाउनी की बोली है। सरयू और रामगंगा का दक्षिणवर्ती क्षेत्र गंगोली या गंगावर्ती कहलाता है। यह बोली गंगोली तथा उत्तर में उससे लगे दानपुर परगने के कुछ गांवों में बोली जाती है। इसके अंतर्गत बेलबड़ाऊं, पुंगराऊँ, अठगांऊँ और कुमेश्वर पट्टियां आती हैं।

दनपुरिया- दनपुरिया पश्चिमी कुमाउनी की बोली है। दनपुरिया बोली का क्षेत्र दानपुर है। यह बोली दानपुर के अतिरिक्त तल्ला दानपुर, मल्ला कत्यूर, तल्ला कत्यूर, बिचला कत्यूर, पल्ला कमस्यार, यल्ला कमस्यार, डुंग, नाकुरी तथा मल्ला रीठागांड़ आदि क्षेत्रों मरण बोली जाती है। मल्ला दानपुर इस बोली का मुख्य केंद्र है। इसके पश्चिम में गढ़वाल तथा पूर्व में जोहार क्षेत्र पड़ता है। दानपुरिया बोली क्षेत्र से लगा गंगोली बोली क्षेत्र है। दानपुर परगने के पश्चिमी भाग में गोमती तथा सरयू हैं। ये दोनों नदियां बागेश्वर में मिलती हैं। इन क्षेत्रों की बोलियों का प्रभाव भी दनपुरिया पर दिखता है।

पछाईं- पछाईं पश्चिमी कुमाउनी की एक और बोली है। रामगंगा के ऊपर नैथाना पर्वत श्रेणी के निचले भाग में पाली नांमक कस्बे के नाम पर कुमाऊं का पश्चिमी भू-भाग पछाऊँ कहलाया। इस पाली पछाऊँ परगने की बोली ही पछाईं कहलाती है। रानीखेत की झूलादेवी चोटी से बैनाघट तथा चौमू पर्वत श्रेणी तक फैले हुए क्षेत्र को फ़लदाकोट तथा उसका पश्चिमवर्त्ती भाग पाली कहलाता है। पाली पछाऊँ परगने के ही कुछ पश्चिमी तथा उत्तर पश्चिमी गांवों में गढ़वाली बोली जाती है। पाली-पछाऊँ में गेवाड़ (गिवाड), चौकोट, दोरा (द्वारा,)सल्ट, सिलोर, मासी, चौखुटिया आदि पट्टियां आती हैं।

रौ-चौभैंसी- इस बोली को रौ-चौबैंसी भी कहा जाता है। यह पश्चिमी कुमाउनी की ही बोली है। यह बोली नैनीताल ज़िले के रौ व चौभैंसी नांमक पट्टियों में बोली जाती है। इसके अतिरिक्त रामगढ़ तथा छखाता के पर्वतीय क्षेत्रों में भी इस बोली को बोला जाता है। नैनीताल ज़िले के कोसी नदी के खैरना से लेकर रामनगर तक फैले भाग को कोस्यां कहा जाता है। इस बोली पर खसपर्जिया का प्रभाव है। रौ-चौबैंसी बोली से खसपर्जिया तथा चौगर्खिया से साम्य है।

2.5.2 पूर्वी कुमाउनी की बोलियाँ

कुमय्यों (कुमाई) - यह काली कुमाऊं क्षेत्र की बोली है। काली (शारदा) नदी के किनारे बसे होने के कारण इस क्षेत्र को काली कुमाऊं के नाम से जाना जाता है। काली कुमाऊं की बोली कुमय्यां या कुमाईं नाम से जानी जाती है। इसके उत्तर में पनार तथा सरयूं नदियां, पूर्व में काली नदी, दक्षिण में भाबर तथा पश्चिम में लधिया नदी से युक्त देवीधूरा पर्वतमाला है। लोहाघाट और चंपावत की बोली को ही कुमाईं बोली कहते हैं। यह बोली पूर्वी कुमाउनी की प्रतिनिधि बोली है।

सोर्याली- पिथौरागढ़ जिले के सोर परगने की बोली सोर्याली कहलाती है। सोर का मुख्य भू-भाग सैण या मैदानी है। शायद इसीलिए इस क्षेत्र को सैणी सोर कहते हैं। पूर्व में यह क्षेत्र काफी समय तक नेपाली शासन के अधीन रहा था। सोर शब्द नेपाली में सोहोर(तीव्रगामी बहाव) के अर्थ में मिलता है। संभवतः इसके पूर्व इस स्थान पर झीलें रही हों। भौगोलिक

दृष्टि से पिथौरागढ़ ज़िले का सोर परगना नेपाल का सीमावर्ती भाग है। नेपाल के निकट होने के कारण सोर्याली पर खसकुरा या नेपाली का प्रभाव दिखता है। कुछ विद्वान सोर्याली को ही पूर्वी कुमाउनी की प्रतिनिधि बोली मानने के पक्षधर हैं।

सीराली- यह पूर्वी कुमाउनी की बोली है। पिथौरागढ़ ज़िले में अस्कोट के पश्चिम तथा गंगोली के पूर्व का भूभाग सीरा कहलाता है। सीरा क्षेत्र की बोली सीराली या सीर्याली कहलाती है। सीराली बोली पर अस्कोटी, सोर्याली, गंगोली तथा जोहारी बोलियों का प्रभाव दिखाई देता है।

अस्कोटी- अस्कोटी पूर्वी कुमाउनी की बोली है। पिथौरागढ़ ज़िले के सीरा भूभाग के उत्तर-पूर्व में स्थित अस्कोट क्षेत्र की बोली को अस्कोटी कहा जाता है। अस्कोटी बोली, सोर्याली जैसी मानी जाती है। जोहार तथा नेपाल के निकटवर्ती क्षेत्र होने के कारण इसमें जोहारी व नेपाली का प्रभाव भी दिखता है। यह क्षेत्र राजी जनजाति का निवास स्थल भी है। इस कारण अस्कोटी पर राजी बोली का प्रभाव भी है।

अभ्यास प्रश्न- 2

1- पूर्वी कुमाउनी की बोलियों का परिचय 500 शब्दों में प्रस्तुत कीजिये।

2- पश्चिमी कुमाउनी की बोलियों का परिचय 500 शब्दों में प्रस्तुत कीजिये।

2.6 सारांश

प्रिय छात्रों! इस इकाई में आपने कुमाउनी भाषी क्षेत्र की प्रमुख उपभाषाओं एवं बोलियों के संदर्भ में अध्ययन किया। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपने जाना कि कुमाऊं का भाषा क्षेत्र पूर्वी कुमाऊं और पूर्वी कुमाऊं के नाम से जाना जाता है। पूर्वी कुमाऊँ के अंतर्गत चार उपभाषाएँ तथा पश्चिमी कुमाऊं के अंतर्गत छह उपभाषाएँ बोली जाती हैं। इन उपभाषाओं के अंतर्गत भी अनेक समृद्ध बोलियाँ बोली जाती हैं। इस प्रकार कुमाऊं भाषा का अपना समृद्ध संसार है।

2.7 शब्दावली

मध्य हिमालय- हिमालय के बीच का हिस्सा

बोली – भाषाओँ का क्षेत्रीय रूप

भाषाई वैविध्य – भाषाओँ की विविधता

समृद्ध – भरा-पूरा

भू-भाग – भूमि का भाग

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1- मध्य हिमालय

2- ख

3- ग

4-क

5- राजी

2.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कुमाउनी भाषा का उद्भव एवं विकास तथा उसका भाषिक अध्ययन-प्रो देव सिंह पोखरिया, डॉ भगत सिंह, अंकित प्रकाशन

2. हिंदी की सहभाषा कुमाउनी, शेरसिंह बिष्ट, साहित्य अकादमी प्रकाशन

2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. कुमाउनी हिंदी शब्दकोश-पालीवाल

2. हिंदी साहित्य कोश, भाग 1, संपादक डॉ धीरेन्द्र वर्मा

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

1- कुमाउनी की प्रमुख बोलियों का परिचय दीजिए।

2- कुमाउनी भाषा के प्रमुख क्षेत्रों को चिह्नित करते हुए वहां बोली जाने वाली प्रमुख बोलियों का परिचय प्रस्तुत कीजिये।

इकाई 3 कुमाउनी साहित्य में वर्णित समाज

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 कुमाउनी साहित्य में वर्णित समाज

3.3.1 कुमाउनी मौखिक साहित्य में वर्णित समाज

3.3.2 कुमाउनी लिखित साहित्य में वर्णित समाज

3.4 सारांश

3.5 शब्दावली

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.7 सन्दर्भ सूची

3.8 सहायक पाठ्य सामग्री

3.9 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

साहित्य और सामज में बहस होना 20 शताब्दी के आरम्भ हुआ। साहित्य के समाजशास्त्र को स्थापित करने में विशेष उल्लेखनीय नाम है मादम द स्ताल 1966 – 1817। विको एकजर्मन दार्शनिक था जो 1724 तथा हर्डर जर्मन दार्शनिक इससे पूर्व सामज और साहित्य के सबंधों के बारे में चर्चा कर चुके थे। मादम की पुस्तक 'दि ला लितरात्यार' (साहित्य के विषय में) मादम साहित्य के दो मूल तत्व मानती है 1 . स्वातन्त्र्य भावना 2. सदाचार देखें तो पाते हैं कि दोनों तत्व मुख्यतः मध्यवर्ग से ही सम्बद्ध है। इसमें दूसरा नाम है फ्रांससी विद्वान तेन का तेन के पहले एडम स्मिथ, हीगेल , स्पेंसर भी साहित्य और समाज के सन्दर्भों में बात कर चुके थे। साहित्य में समाजशास्त्र की का अध्ययन इस तरह से किया जाता है १- कुछ घटकों की परिकल्पना 2 – साहित्य और समाज की संरचनाओं में समानता 3 – संस्था के रूप में साहित्य का अध्ययन[1] । एस्कापरीट साहित्य और समाज को इन तीन मुख्य घटकों से पकड़ता है 1. लेखक 2. कृति 3. पाठक। एस्कापरिट कहता है "लेखक साहित्य का सृष्टा है साहित्य में उसका प्रतिफलन होता है। साहित्य को समझने के लिए लेखक के व्यक्तित्व को रूपायतित करने वाले तत्वों का विश्लेषण करना जरुरी है ।वह आगे कहता है "लेखक एक खास वर्ग को संबोधित करता है उसकी सृजनात्मक प्रक्रिया पाठक वर्ग की अभिरुचियों , पर्यावरण और विचारधारा से नियंत्रित होती है ।लेखक अपने समय की जनता आकांक्षाओ का पोट्रेट प्रस्तुत करता है। रचना की सफलता पाठकों की स्वीकृति और असफलता पाठकों की अस्वीकृति पर निर्भर करती है।"[2]

हिंदी साहित्य के सन्दर्भ में साहित्य और समाज को लेकर विद्वानों ने अलग अलग विचार रखे यथा बालकृष्ण भट्ट ने साहित्य को 'जन समूह के हृदय का विकास' माना है तो महावीर प्रसाद दिवेदी ने साहित्य को 'ज्ञानराशि का संचित कोश' माना है। मुक्तिबोध ने 'कलाकृति को जीवन की पुनर्रचना' माना है और रामचन्द्र शुक्ल ने साहित्य को 'जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब' माना है। प्रेमचंद ने 'साहित्य को समाज के आगे.आगे चलने वाली मशाल' कहा है। हम यहाँ हिंदी की मध्यपहाड़ी भाषा कुमाउनी के सन्दर्भ में कुमाउनी साहित्य में वर्णित समाज के विषय में बात करेंगे। इस भाषा समूह की जो समाजशास्त्रीय आलोचना और मौखिक इतिहास में मील का काम किया वह काम किया डॉ० रामसिंह ने कुमाउनी साहित्य और समाज और इतिहास के संदर्भ दुर्लभ है ।उनकी महत्वपूर्ण पुस्तक राग-भाग काली कुमाऊं इसका उत्कृष्ट उदाहरण है जो प्रत्येक विद्यार्थियों को अवश्य पढनी चाहिए।

3.2 . उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप समझ सकेंगे—

- विद्यार्थी साहित्य और समाज के अंत सबंधों को समझ सकेंगे
- कुमाउनी साहित्य में वर्णित समाज के विषय में जान सकेंगे
- साहित्य के समाजशास्त्रीय पक्ष की पड़ताल कर सकेंगे

3.3. कुमाउनी साहित्य में वर्णित समाज

साहित्य का सीधा सम्बन्ध समाज से है और समाज मात्र संरचना नहीं है। ठीक उसी तरह जैसे कि हिमालय मात्र एक भौगोलिक संरचना नहीं है। बिलकुल नया बनता हुआ यह हिमालय अपने प्रारंभिक अवस्था से ही रहवासियों का चिर सहयात्री रहा है। इसको और इसके रहवासियों को देखे जाने के तमाम नजरिए है। इस हिमालय ने भारतीय समाज, जन, धर्म , मिथक, संस्कृति को अपनी तरह से प्रभावित किया और उससे प्रभावित भी हुआ ।इसी हिमालय की उपत्यका में शामिल है कुमाऊं भूभाग और उसका समाज। साहित्य में वर्णित समाज को मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त करते हैं—

मौखिक साहित्य में वर्णित समाज एवं लिखित साहित्य में वर्णित समाज

3.3.1 कुमाउनी मौखिक साहित्य में वर्णित समाज

कुमाउनी मौखिक साहित्य में लोकगाथाओं को छोड़ दें तो आम साहित्य जन और उसमें भी प्रमुख रूप से स्त्रीजीवन व दलित कामगार या सांस्कृतिक श्रमिकों का समाज दिखाई देता है उत्तराखण्ड की मौखिक परम्परा में बखान की जो परम्परा है वह गुड़ौल गीतों, भगनौल- बैर, चांचरी, न्यौली, ठुलखेल, वीर गाथाओं, जागर गीतों में सबसे अधिक देखने को मिलती है। भेड़ चरवाहों के जंगली गुफाओं में किस्सों, कथाओं को कहने का अपना अन्दाज है। रातभर आग के चारों ओर बैठ कर वे बारी-बारी अपने किस्से सुनाते हैं। बरसात और जाड़े के दिनों में घर के बुजुर्ग दादा-दादी के किस्से और कथा कहने की परंपरा किसी समय यहाँ भी थी। इन कथाओं को कहने वाला बीच में झिंगुर से लेकर साँप, पशु, पक्षी, बादल, नदी सबकी आवाजें निकाल कर अपने किस्सों और कथाओं को और ज्यादा विश्वसनीय व रोचक बनाते हैं। वीरों के बखान में घोड़ों की आवाज, तलवार के टकराने के आवाजों को तक शामिल करते हैं। सामुहिक श्रृंगार गीतों के मुख्य गायक को बखड़वा या बखड़न्या कह कर सम्बोधित किया जाता है जिसका अर्थ है बखान करने वाला, जो गीत को जोड़ते हुए आगे को गति देता है। इन सन्दर्भों से जो आशय मैंने बखान का लगाया है वह वर्णन या विषय विस्तार करने से ही लगाया है। जिसमें केवल शब्द ही नहीं ध्वनियों व आंगिक चेष्ठायें भी सम्मिलित हैं। उत्तराखण्ड में लगभग 11 पौराणिक गाथाएं 16 स्थानीय क्षेत्रीय देव गाथाएं, 25 वीर गाथाएं और 11 प्रणय गाथाएं मिलती हैं जिसे कहने वाली या तो महिलाएं हैं या अपेक्षाकृत तथाकथित सवर्णों से नीचे माने जाने वाली जातियाँ हैं। और इन कथाओं में कुमाउनी समाज रहन सहन आचार व्यवहार का व्यापक परिदृश्य देखने को मिलता है।

दैनिक जीवन में पहाड़ों के ऊँचाई में चढ़ते उतरते हुए ये महिलाएं जगलों के बीच अपने होने.. मिटने, बनने के बोल रख आती है। यही बोल घाटीयों और पहाड़ों से टकराकर गीत में बदल जाते है। "तिलै धारू बोला" यानि कि तूने इन पहाड़ों पर अपने बोल रखे, वचन दिए। यहाँ के कुछ गीतों की टेक में "तिलै धारू बोला" इसीलिए कहा जाता है। ये वही गीत है जिनमें एक नयी पंक्ति जोड़ने साथ गुनगुनाने साथ में नृत्य करने से पहाड़ी महिलाओं का बेढब जीवन थोड़ा आसान हो जाता है। सामर्थ्य भर बोझ उठाने का उनका अदम्य साहस बना रहता है।

रूढ़िया खेत तुड़क्या पानि रूमाल भिजूंलो ऊँच डाणो निसो वे जा मैं ईजु देखूंलो।

एक पहाड़ी महिला जेठ में सूख चुके टप-टप गिरते पानी के बूँदों में एहसासों के रूमाल भिगाने की कोशिश में है। महिला विशालकाय पहाड़ से कहती है, "अरे ओ पहाड़ थोड़ा झुक जा तुम्हारे दूसरी तरफ जो मेरी माँ रहती है मुझे अपनी माँ की याद आ रही है। मैं उन्हें देखना चाहती हूँ। निष्ठुर पहाड़ कहाँ यह समझ सकने में समर्थ है ?

पहाड़ों को लेकर बहुत से फैंटेसी भरे नरेटिव देखने-सुनने-पढ़ने को मिलते हैं दरअसल वह सारे आमजन के पहाड़ से एक भिन्न अभिजातीय पहाड़ है। पहाड़ में लोक संस्कृति का प्रतिनिधित्व तथाकथित सभ्य जातियों द्वारा दलित कही जाने वाली जातियां और स्त्रियां ही करती है। इसके मूल गायक भी यही है। यही पहाड़ का सबसे मेहनती तपका भी है। इन गीतों में इनके सुख-दुख और संघर्ष सहज ही देखे जा सकते हैं।

फुला सरसेऊ माया रे पिंगली छै रे केश
आज छोड़ी जांछू ईजू रे मैतुरा को रे देश
कै डाना है देखलि ईजु मै मैतुरा को रे देश
कै 'धुरा है देखूंली बूबा मै मैतुरा का देश
हेरी ऑल फेरि ऑल मै मैतुरा को देश'

परन्तु यह भी सत्य ही है पहाड़ी अभिजन लोक संग्रहकताओं द्वारा महिमामण्डित कुमाऊँनी और गढ़वाली दोनों ही समाजों में जाति और लिंग की असमानता भले ही सुन्दर रमणीक पहाड़ों बुग्यालों और घाटियों के सौन्दर्य में दिखाई न देती हो पर दूर दराज के पहाड़ आज भी इससे ग्रसित है। इनके सारे अनुभवों भी यहां के लोकगीतों में जुड़ते चले गये हैं। अभिजन नायिकाएं और निचली समझी जाने वाली जातियों में दर्जीयों, ग्वालों के साथ प्रेम प्रंसग के लोक गीत गाहे-बगाहे सुनने और आचांचरी जोड़ों में देखने को मिल जाते है।

मुनिया टेलर मुनिया
गोपुली बामणी
या
भागा वे पंत्याण भागा छुम-छुमा

उपरोक्त चांचारी (लोक गायन की एक शैली) की टेक में एक टेलर के साथ गोपुली नाम की ब्राह्मण महिला के स्वच्छंद मिलन का जिक्र आता है। इसी तरह 'भागा' नाम की ब्राह्मण कन्या पर भी गीत मिल जाता है। लेकिन गैर ब्राह्मण महिलाओं में अपेक्षाकृत ज्यादा मांसल गीत मिलते है। कई लोगों का मानना है कि लोक संस्कृति एक जड़ व रूढ़ चीज है । परन्तु यह संस्कृति को देखने का एक ही पहलु हो सकता है। "लोक संस्कृति अपनी वाचिक पम्परा में स्थितिशील न होकर गतिशील है। हर पीढ़ी अपनी थाती में अपने समय के अनुभवों को किसी न किसी रूप में जोड़ती चलती 1 स्थितिशील जड़ता कृत्रिमता और कला चम्तकार को लोक संस्कृति में स्थान नहीं मिलता उसकी सबसे बड़ी कसौटी सामुदायिक सामूहिक जीवन है। जो अनुभूति सामुदायिक जीवन का हिस्सा नहीं बन सकती वह लोक साहित्य में अभिव्यक्ति नहीं पायेगा । पहाड़ पर पैदा हुए छायावाद के स्तंभ कवि गुंसाई पंत सुमित्रानंदन जी की कोमलकान्त पदावली से इतर ये लोक गीत पहाड़ के हाड़-मास का प्रतिनिधित्व करते हैं। उपरोक्त पंक्तियां विवाह में विदाई का गीत है जिसमें दुल्हन अपने माँ से कह रही है कि मैं आज अपना मैंतुरा देश यानि कि माँ का घर छोड़ के जा रही है। अब किस पहाड़ से किस पहाड़ी के जंगलों से अपने माँ का घर देखूंगी। पिता मुझे एक बार अपना गाँव अच्छे से देख के आने दो और घूम कर आने दो। डॉ० त्रिलोचन पाण्डे जिन्होंने कुमाऊंनी साहित्य कि दस्तावेजीकरण में शुरूआती काम किया वे कहते है कि "कुमाऊँनी साहित्य का बहुलांश स्त्रियों द्वारा ही निर्मीत है। जो पुरूषों के अपेक्षा अधिक सक्रिय रहा है। यहां की ग्रामीण स्त्री अकेले जंगलों में जाकर घास, लकड़ी काटन है। नदियों-नालों से पानी भरती है, कृषि कार्यों में हाथ बंटाती है। सामूहिक उत्सवों

में सक्रिय योग देती है। स्थानीय नृत्यगीतों में वह पुरूषों के साथ मिलकर अपने भावों करे स्वच्छंद अभि व्यक्ति करती है। बरसात में पूरे उत्तरपूर्व में पश्चिम नेपाल में कुमाऊँ के पहाड़ी इलाकों में आँठू यानि गौरा पर्व गायन किया जाता है। गौरा गीत हिमालयी महिलाओं के जीवन वृत का प्रबंधात्मक गीत काव्य है इसके नायक और नायिका मैसर और गौरा है। इस प्रबन्ध गीत की नायिका लौली (गौरा या गमरा) का वर्णन मिलता है।

कहँ उपजी कहँ उपजी लौली रे गमरा
बालु बोट गङ ठु लोली रे उपजि
तिल बोट धाना बोट लोली रे उपजि
पोखर भाड़ी निमुआ भाड़ी लोली रे उपजि

आँटू के इन गीतों के माध्यम से पता चलता है कि यह गौरा-मैसर पूर्ण रूप से मध्य हिमालय के जन-जीवन का अपने द्वारा निर्मित लोकल संस्करण है। इसमें गौरी को बलू के पेड़ से तिल के पेड़ से धान के पेड़ से नीबूं के बगीचे में पैदा होते दिखाया गया है। "लोकगीतों के अनेक रूप है जिसमें भ्वैनी, चांचरी, जोड़, हुलैरी (लौरी) न्यौली, होली, विवाह के अवसरों पर बारामासा, चैत में ऋतुरैण आदि अमूमन महिलाओं द्वारा गाये जाते हैं"[4] पहाड़ में पुरानी कहावत है, पहाड़ो को महिलाओं ने ही अपने आँचल में पास-पोस कर बड़ा किया है। अमूमन पहाड़ी महिलाओं के पति दूर देश में सेना या अन्य पेशों के लिए काम करते है। घर समाज सभी महिलाएं संभालती है। पर फिर भी उन्हें पैतृक समत्ति के अधिकार नहीं प्राप्त है। एक परम्परागत लोक गीत में पहाड़ की महिला अपने पिता से निवेदन करती है।

छाना बिलौरी जन दिया इजू लागला बिलौरी का घाम
हाथ कि दाथुली हाथै रै जाली लागला बिलौरी का घाम

"पिता मुझे छना और विलौरी गांव में मत ब्याहना वहाँ धूप बहुत तेज है। मैं कुछ काम नहीं कर सकूँगी। मेरी दराती मेरे हाथ में रह जायेगी।" कुमाऊँनी समाज में महिलाओं के शोक गीत भी सुनने को मिलते है। इन ओक गीतों में एक गीत है आत्महत्या का गीत। इन गीतों में पता चलता है कि पहाड़ की महिलाओं का आत्मसंघर्ष और सामाजिक संरचना में उनकी हिस्सेदारी और पहाड़ के संन्दर्भ।

चुट मसुर मसुर बुकि
मेरि रतिका दुखि छै, सुखि ? पैलि को पुआ जलि भसम
मेरि रतिका दुखि छ सुखि रतिका बौज्यू रति बुलैदे
मेरि रतिका दुख छ सुखि

उपरोक्त संदर्भित पंक्तियां एक करुणगीत से ली गई हैं। जिसमें राधिका नाम की लड़की की हत्या उसके ससुराल में हो गई है। माँ-बाबा को इस बात की कोई सूचना नहीं है कि राधिका मर गयी या जिन्दा है। क्रूर सास राधिका के पिता को बार-बार राधिका को लेकर झूठ बोलती है बहाने बनाती है कि वह जंगल गई है, वह भेड़ चराने गयी है। दूसरी तरफ राधिका की माँ अपने पति से राधिका को बुलाने की जिद कर रही है वह पूछ रही है कि राधिका सुखी या दुखी ? इसी तरह से एक आत्महत्या का भी गीत भी कुमाऊंनी स्त्री गीतों में देखने को मिलता है। भिमुवै कि डाई करिये निसाफ आज मैं कणी लैरो निसास फांसी बणी गौ मेरो सौरास भिमुवै कि डाई करिये बिचार ज्योड़ी बांधुन आज त्वे पर नी फाड़ी मैले ब्या कि झगुलि नौ तोड़ा मैंले दातुलि ज्योंड़ी कैले चलायो दान दहेज कैले चलायो चेली बेवूण

भावानुवाद

मेरे लिए फांस बन गया है। भिमुवा की डाली तू सोच जरा में आज तुझ पर रस्सी ओ भीमल भिक्वा के पेड़/ मैं आज उदास हूँ / मेरा ससुरार बांधने जा रही हैं/ पर मैं अभी नव विवाहिता ही थी। अभी तो मेरी शादी के

झगूला भी नहीं फटा/अभी तो मेरी घास काटने को दी गई थी वह दाराती और रस्सी भी नहीं तोड़ सकी है। भिवा की डाली ये बताओ कि ये दान दहेज किसने चलाया होगा/ ये लड़की का विवाह करना किसने चलाया होगा।[5]

भीमल की हरी पत्तियां पालतू जानवर बहुत प्यार से खाते है भीमल एक चारे का पेड़ है। इस पेड़ के साथ स्त्रीयों के अपने संबंध है यह संबंध बहुत भावुक । इसी भीमल Grewia optivads पेड़ को लेकर दर्जनों गीत और छोटे-छोटे जोड़ घस्यार महिलाओं द्वारा बनाई गई प्रतीत होती है। एक ऐसे हो पेड़ से एक पहाड़ी महिला आत्महत्या करने से पहले एक संवाद कर रही है। जैसा कि लोक कथाओं में और मध्ययुगीन प्रेमाआख्यानों में अक्सर देखने को मिलता है कि स्त्रियां अक्सर अपने दुख-सुख पेड़-पौधों, पछियों-जानवरों को कहते दिखती है। तत्कालीन पुरुष समाज में स्त्रियों को अपने मन की बात कहने के लिए क्यों प्रकृति की आवश्यकता पड़ी है? यह एक अलग बहस का मुद्दा है। जैसे कि इस आत्महत्या के गीत में यह नई नवेली दुल्हन भीमल के पेड़ से कह रही हैं। चेलिक धन्दा छू यो खराप स्वामी पिनी इजू रातिब्याव सराप कसी काटनुं दिन कसि काटूं रातं क्वे सुणां इजु मेर दुखै कि बात सौरास में लै मारि खाई भौत आज इजू मैं करनूं मौत गाड़ गधेरि बासनि फ्यूंना जल सोचै इजू चेलि होलि ज्यूना'

भावानुवाद

माँ लड़कियों को ब्याहकर ससुराल भेजने की रीत किसने बनाई/मेरे पति सुबह-शाम शराब पीते है /कैसे काटू दिन और कैसे रात काटू।/ कौन सुनेगा मेरी दुख की बात / माँ मैने ससुराल में बहुत मार खाई है/ ओ मेरी माँ आज मैं आत्महत्या करने जा रही हूँ/ नदी नालों में इस वक्त फ्यूना नाम की चिडियां बोल रही है /इस चीडियां की आवाज सुनकर ये मत समझना कि तुम्हारी बेटी जिन्दा होग।

इन गीतों को सुनते हुए पहाड़ में स्त्री जीवन के संघर्ष की कथा को समझा जा सकता है यह भी कि जो वंचित और परिधि में आते है उनका पहाड़ कैसा है? वे किस तरह से यहां जीवन बसर करते हैं? यहाँ विरह के लिए न्यौली गीत है जो पहाड़ों में जानवर चुगाने के लिए गई महिलाओं और घास काटती खेती करती महिलाओं द्वारा गाया जाता है। ये गीत बहुत ही मार्मीक और पहाड़ों के निभ्रत वनों में मार्मीक स्वर में किलकने वाली हिमालयन बारबेट यानि न्यौली चिड़िया के नाम से जाने जाते है इस चिड़ियां को पहाड़ में विरह का प्रतीक माना गया है। घूघूती जंगली फाख्ता की प्रजाति के पक्षी को भी विरह का प्रतीक माना जाता है।

काटना काटना पोलि ऊँछ चौमासी को वन थामी जांछ बग्नया पाणि नै थामिनो मन'

भावानुवाद

(कितना ही काटो फिर से उग आता है बरसात में जंगल । बहता हुआ पानी भी थामा जा सकता है पर नहीं थामा जा सकता मन ।)

इस सबके बीच महिलाएं अपनी सामूहिकता को कभी नहीं छोडती है कुछ सामूहिक गीतों में वह अपने जीवन को पूरा जीते हैं उत्साहित होते हैं। मीलों दूर जश्तों में जाकर रात भर गोल घेरे में नृत्य करती है। रात खुलने वक्त अपने साथीयों से कहती हैं।

हापुरा बजाणी धूरा बाजै कि हवा छै आजू का जाईयां बटी कबै कि अवै छै ।

भावानुवाद पहाड़ों की चोटीयों पर बाज (Oak) की हवा चलने लगी है अरे ओ साथी आज के गुजर जाने के बाद फिर कब मिलना होगा ?

इतना ही अनिश्चित मिलना है और इतनी ही गहरी है उस मिलने के बाद बिछुड़ने की टीस भी। जहां एक तरफ पूरे लोक गीतों में ममूमन लौरियों में बालक का अर्थ केवल पुरूष बच्चा है कुमाउंनी लोक लौरियों में बालक बालिका के जगह

केवल एक ही शब्द प्रचलन में हैं' भौ' इसीलिए की इसकी अमूमन गायन कामगार स्त्रियों ही करती है। ओली ले ओली ले तू मेरी प्वोथि मेरो बावो ईजा
तेरी इजु मालूरी का घासू जै रे
आंग्ली काटि लालि चुची भरी लालि
आरे रे आ रे /तू मेरी चिड़ियां /सुन तेरी माँ मालू के पत्तों का घास
लेने गई / गल्थी भर घास काटकर लोयेगी / स्तनों में दूध भर लायेगी।
ऐसे बहुत चित्र मिलते है जिसमें अन्य लोकों की तरह की यहाँ भी महिलाओं के पति बाहर नौकरी करते है। घर के सारे जरूरी काम महिलाओं के ही जिम्मे होता है। पहाड़ी महिलाएं बहुत सुबह ही दारातियां लिए बे पहाड़ों की तरफ बढ़ती है और घास काटकर लौटती है घर में दुधमुहा बच्चा माँ के इन्तजार में है और तब उसे सुलाने के लिए इसकी दादी या उसे यह गीत सुनाती है। लोकगीत साहित्य की अमूल्य और अनुपम निधि हैं। इनमें हमारे समाज की एक-एक रेखा, सामयिक बोध की एक एक अवस्था, सामूहिक विजय पराजय, प्रकृति की गतिविधि, वृक्ष, पशु पक्षी और मानव के पारस्परिक संबंध, बलि, पूजा, टोने-टुटके, आशा-निराशा, मनन और चिन्तन सब का बड़ा ही मनोहारी वर्णन मिलता है।"
जंगल घास काटने गई महिला की जिन्दगी बच्चे और भैंस के गिर्द भागती रहती है। वह इस भागमभाग को भी सामूहिक गीत चाँचरी में बदल देती है। यह चाँचरी पूरे गाँव की महिलाओं की जिन्दगी को व्यक्त कर देती है सब गोल घेरे में गाते हैं
हतोड़िया भैंसी मेरी भैंसी खित्योनी सौनी नै। धुर वनों में घास काटण नानी भौ मेरी रौनी नै । झांठी का घुंघुर सुवा, भैंसी खित्योनी सौनी नै कैथे कूलो दुःख सुख, भैसी खित्योनी सौनी नै क्वे देलो हुंगर सुवा नानी भौ मेरी सौनी नै।[5]
भावानुवाद
हाथ पुगंराऊ भैंस है मेरी, बुरी है दूध नहीं देती/ऊँचे जगंलों वनों में जाकर मैं घास काटती हूँ। घर पर मेरी छोटी बच्ची मेरे बैगेर नहीं रह पाती/ लाठी में जो घुंघरू बांधे है वे बजते है पर मैं तो अपना दुख-सुख किससे बाँटू को हुंगरा देने वाला यानि मेरी कहानी में हूँ हाँ कहते हुए सुनने वाला भी नहीं।
कुमाऊँ मण्डल, गढ़वाल मण्डल से संघन सांस्कृतिक संदर्भों के साथ जुड़ा है और दोनों ही क्षेत्रों में स्त्री वीर नायिकाओं की पुरानी प्रणय गाथाएं और वीर गाथाएं भी प्रचलन में है । बीर गाथाओं में कत्यूर वंश की रानी जिया और वीर बाला तीलू रौतेली के अलावा प्रणय प्रेम गाथाओं में कुसुमा कोलिन फ्यूँली रौतेली, सरू कुमैण, मालूसाही, जसी, गजू-मलारी, तिलोगा तड़ियाली भानागंगनाथ, सूजू की सुनारी, अर्जुन-वासुदत्ता आदि गथाएं प्रचलन में। इ गीतों में पहाड़ी स्त्रीयों के जीवन और संघर्ष को लोक गायकों और महिला के मुंह जुबानी बखुबी सुना जा सकता। इसे लोक गायक स्त्रीयां बहुत ह भाव और लय में सुनाते है। सामुहिक गीतों में गुड़ौल गीतों (गुड़ाई के गीत) भी इन कथाओं को गाया जाता है। महिलाओं का रचा यह लोक तरह-तरह की सामजिक झांकियों से युक्त है। भले ही पहाड़ी समाज इन महिलाओं के लिए उदार न रहा हो पर जंगल और पहाड़ों के बीच में उनकी सामूहिक उपस्थिति काफी हद तक स्त्रियों आपस दारी और अपने दुख को साझा करने का स्पेस ये सामूहिक ही था। कुमाऊँ में भैलो गीत है जिसे लेकर कुमाऊँ में भैलो गीत अब उन गीतों की श्रेणी में आता है जो लुप्त हो गये हैं। वैसे तो यह गीत सामंती कृषि युग का गीत है जिसमें यहाँ की कुछ जातियाँ अपने ततथाकथित बड़ी जाति के आंगन पर जाकर गाती रहीं थीं परंतु कहीं-कहीं भैलो गीत ग्रामीण बच्चे और बालिकाएँ भी गाती थीं। इसके पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं। यह गीत पशुचारक समाज के अधिक निकट जान पड़ता है।

इसमें प्राकृतिक बिम्बों, जानवरों, फलों के साथ-साथ साक-सब्जियों का जिक्र पाया जाता है। नेपाल में गायक गंधर्व ने इसे बहुत सुरीले स्वर में गाया है कुमाउनी भैलो गीत से किंचित भिन्न लय और ताल में जिसे यू ट्यूब पर भी सुना जा सकता है। इसी के साथ इसका दूसरा वर्जन यह भी है कि यह केवल बड़ी जोतों के किसानों का त्यौहार है। बहुत हद तक यह संभव है। पर गीत में जिस जमींदार समाज का जिक्र है, वह उत्तराखण्ड की तथाकथित बड़ी राजजातियों की तरफ इशारा करती है। हुडकी बौल में भी समाज को एक भिन्न रूप से देखा गया है इसे पूर्ववर्ती अध्येताओं ने केवल कृषि गीत कहकर इतिश्री कर ली है। उददेश्य की पूर्ति में लगा हो, उसे सामूहकिता नहीं कहा जा सकता है। जबकि जमींदारों के खिलाफ कोई लोक गीत सामुहिक नहीं दिखता । क्योंकि दासता से मुक्ती का भाग्यवादी नजरिया हमारे लोकों में हावी रहा । परन्तु नव जागरण के बाद यह भाग्यवादी नजरिया छूट गया क्योंकि यह एक सवर्था नई चेतना है। इसीलिए हुड़की बौल सबसे पहले खत्म होने वाले लोक गीतों में है । क्योंकि इससे सबसे पहले हुड़किया हटा जो फटे हाल जाति का दंश सहते हुए गाथाओं की गा-गा कर सिरतानियों के रंगों में अपने सामन्त या राजा की वीरता, उदारता के किस्से गाता रहा । सब खैकर खाने का कर देने वाली जातियाँ थीं। उसमें एक खास व्यवस्था के तहत पेशागत जातियाँ थीं जी सामन्तों के लिए काम करते थे। ओड़, बारूड़ी, बाजगी, किसान, ल्वार सभी इसी कर के रूप में अनाज अपने सिरतानों को देते थे और कुछ अपने पास रखते थे।

दुनिया के तमाम पुराने समाज में अपने राजाओं और मालिकों के लिए उनके खेतों में काम करते गाये जाने वाले गीत इसी तरह के हैं। इसलिए हुड़की बौल कोई दुर्लभतम उदाहरण नहीं है। ये भी सच है कि बहुत बाद में जाकर जब भूस्वामित्व इन्हीं खैकर जातियों / वर्गों के पास आया तो इनमें भी जो सबसे दबंग जातियाँ और पधान परिवार थे, वे एक तरह से इस सामुहिकता का प्रयोग ठीक उसी तर्ज पर करने लगे। कमजोर वर्गों को जमीनों के विभाजनों में ठग लिया गया। पर इसमें एक नये ही तरह की परिघटना हुई। जो यह थी कि तमाम किसानों ने इसे मिलकर अपने खेतों की आर-सार में बदल दिया। पर हुड़का बजाने वाला अब नए जमींदारों का गुलाम हो गया। कुछ जातियों के लिए केवल मालिक बदले। कुछ दास मालिक बने। इन्हीं मालिक जातियों का बहुत बड़ा हिस्सा अब शहरी मध्यवर्ग में बदल चुका है जो इन अवशेषों से यादवादी ढंग से चिपके रहना चाहता है । स्यूसर लिखता है- "श्रम कार्य संगीत और गीत, अपने विकास की आरंभिक अवस्था में एक-दूसरे के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए थे लेकिन इस त्रयी का बुनियादी तत्व श्रम कार्य ही था दूसरे तत्व उसके मताहत थे।" ब्रह्म प्रकाश की 2019 में आई ऑक्सफ़ोर्ड से प्रकाशित पुस्तक Cultural Labour Conceptualizing the 'Folk Performance' in India भारत में सांस्कृतिक श्रम को एक नए नजरिए से देखने की पुस्तक है विद्यार्थी इस सबंध में गहराई से अध्ययन करना चाहे तो इस पुस्तक को पढ़ सकते हैं। जिसमें वह यह स्थापना दर्ज करते हैं. James Scott's statement that, like slavery and serfdom, 'caste subordination represents an institutionalized arrangement for appropriating labour, goods, and services from subordinate popu- lations' इस कथन का सबंध सीधे हुडकी बोळ से मिलता है या रितुरैण से मिलता है । इसके अलावा कई विद्वान इसे कुमाउनी संस्कृति का अभिन्न हिस्सा भी मानते है । लोकगाथाओं में उच्चकुलीन नायकों या तत्कालीन सामंतों , पहलवानों और राजाओं के स्तुतिगान मिलते हैं । मौखिक साहित्य में वर्णित समाज ज्यादातर स्त्री पीड़ा संघर्ष और आम जन के कार्यव्यापारों का व्यापक फलक खींचता है ।

बोध प्रश्न –

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. तीले धारु बोला से आशय है?

क. तूने वचन रखे
ख. मैंने वचन रखे
ग. उसने वचन रखे
घ. सबने वचन रखे

2. भानागंगनाथ हैं ?

क. प्रणय गाथा
ख. बीरगाथा
ग. एकल गीत
घ. मांगल गाथा

3. Cultural Labour Conceptualizing the 'Folk Performance' in India पुस्तक के लेखक हैं?

क. ब्रह्म प्रकाश
ख. ज्ञान प्रकाश
ग. राम सिंह
घ. ज्ञान सिंह

उत्तर – ब्रह्म प्रकाश

4. राग-भाग काली कुमाऊं किसकी पुस्तक है?

क. राम सिंह
ख. लक्ष्मण सिंह बिष्ट
ग. देव सिंह पोखरिया
घ. श्याम सिंह कुटोला

उत्तर – क

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. कुमाउनी साहित्य में वर्णित महिला जीवन पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

---

2. कुमाउनी साहित्य में वर्णित अभिजन समाज पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

3.3.2 . लिखित साहित्य में वर्णित समाज

लिखित साहित्य का आरम्भ विद्वान कुमाउनी में सर्वप्रथम **लोक रत्न पंत गुमानी (1790 -1846) से आरम्भ मानते हैं गुमानी के लेखन में अंग्रेज राज के प्रति अनुरागी और विद्रोही दोनों भाव दीखते हैं**। गुमानी की कविता में पर्वतीय अभिजन जीवन का स्वाभाविक चित्रांकन हुआ है । विद्वान् मानते है कि गुमानी ने हलवाहा, विधवा एंव सामान्य पहाड़ी जन का सहज और आत्मीय चित्रण किया है। गुमानी की कविता में आये सन्दर्भों को आधार बनाकर कुमाउनी हिंदी साहित्य की दलित धारा गुमानी को जाति विशेष का कवि मानती है ।

दूसरे प्रमुख कवि कृष्णानंद पाण्डे माने जाते हैं। इनका जन्म 1800 में अल्मोड़ा के पाटिया गॉव में हुआ। गुमानी द्वारा स्थापित कुमॉऊनी काव्य परंपरा को एक तरह से इन्होंने ही आगे बढ़ाया था। इनकी कविताएं पुस्तकाकार में नहीं मिलती। गंगादत्त उप्रेती ने इनकी रचनाओं का संग्रह और अनुवाद किया । 1910 ई0 में ग्रिर्यसन ने इनकी कविताओं का प्रकाशन 'इंडियन एन्टिक्वैरी' में किया । इनकी कविता में भक्ति, समाज सुधार, व्यंग्य-विनोद पूर्ण कविताएं मिलती हैं । युगीन सामाजिक एवं राजनीतिक विषमताओं पर भी इन्होंने करारी चोट की। इनकी मृत्यु 50 वर्ष की अवस्था में सन् 1850 वर्ष में हुई । उनकी 'मुलुक कुमाऊँ' तथा 'कलयुग वर्णन' कविताएं उन्नीसवीं सदी के आरंभिक कुमॉऊनी समाज का व्यापक सॉचा खींचती हैं। देखें –

'मुलुकिया यारो कलयुग देखो।
घर – कुडि बेचि बेर इस्तीफा लेखो ।।
बद्री – केदार बड़ भया धाम।
धर्म – कर्म की कै न्हाती फाम ।।'[11]

1850 – 1900 ई0 तक) इस युग के प्रमुख कवि चिन्तामणि ज्योतिषी तल्ला दन्या अल्मोड़ा (सन् 1874 -1934) हैं। इन्होंने सन् 1897 में दुर्गा (चंडी) पाठसार को कुमॉऊनी भाषा में अनुवाद किया । इनके उपलब्ध कुमॉऊनी अनुवाद हैं – सत्यनारायण कथा तथा भगवद्गीता । नैन सुख पाण्डे पिलखवा गांव के निवासी थे । इनकी मृत्यु और जन्म के बारे में विद्वान केवल यह मानते आये हैं कि इनका जन्म 1850 के बाद ही हुआ होगा । इनकी कुछ कुमॉऊनी स्फुट रचनाएं

मिलती हैं। इनकी एक रचना है, जिसमें इन्होंने घरेलू काम धंधों में आने वाले औजारों का वर्णन किया है। शिवदत्त सती शर्मा का कुमॉऊनी साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान है। इनका जन्म 1848 में फलदाकोट अल्मोड़ा में हुआ। ये बचपन से कृषि कार्य से जुड़े रहे। अन्धविश्वासों से दूर समाज सुधार के प्रबल समर्थक थे। इनकी आठ रचनाओं का उल्लेख विद्वान प्राय: करते हैं। मित्र विनोद, घसियारी नाटक, गोपी गीत, बुद्धि प्रवेश भाग – 1, बुद्धि प्रवेश भाग – 2, बुद्धि प्रवेश भाग-3 , रूक्मणि विवाह, प्रेम और मोह। घसियारी नाटक में पहाड़ी जन जीवन की कठिनाईयों और अंग्रेजों द्वारा किये जाने मनमाने व्यवहार और उत्पीड़न को नाटकीय शैली में प्रस्तुत किया है। गोपी देवी का गीत में स्त्री जीवन और उसके वैविध्य का कारूणिक चित्रण हुआ है। **उत्तर मध्य युग (सन् 1950 से आज तक) गौर्दों का जन्म अगस्त 1872 अक्टूबर में हुआ।** गौर्दा का साहित्य कुमॉऊनी साहित्य का स्वर्णिम शिखर है। उनकी चेतना और साहित्यिक समझ को कुमॉऊनी साहित्य में कोई नहीं छू पाया है। गौर्दा एक ऐसे समय की उपज थे, जब एक तरफ भारतीय राष्ट्रवाद का उदय हो रहा था और दूसरी ओर स्थानीय जन आन्दोलन स्फूरित हो रहे थे। गौंर्दा की चेतना इसी युग में निर्मित हुई। ''गौर्दा उन कवियों में हैं, जिन्होंने अपने वर्ग से सीधी मुठभेड़ की। 'गौं कि रानौ या आपु जैसि मैं करो, या मैं जैसि तुम है जाओ' ऐसी चुनौती अपने तथाकथित बुद्धिजीवी कहलाने वाले पाखंडी अभिजन समाज को जो वैचारिक बांझपन से ग्रस्त था गौर्दा ही दे सकते थे। उनके कुमाउनी लेखन को पढ़ते हुए हिंदी के कवि निराला याद आते हैं। गौंर्दा की यह घोषणा उस समय की है, जब बारातों और उत्सवों में गरीब आदमी को अपनी जमीन गिरवी रखकर पिठावां या दक्षिणा देनी पड़ती थी। वह अपने इस पाखंडी वर्गों से एक सिपाही की तरह लड़ा। इस दोहरे चरित्र की धज्जियां उड़ाई और बखिया उधेड़ दी। गौर्दा अपने समय की जटिलताओं, आन्दोलनों के सच्चा सिपाही था। वह अपनी तरह से अपनी युगीन समस्याओं से टकराये। चाहे वह शारदा एक्ट हो, कुली उतार हो, स्वराज के आन्दोलन हों या जातिगत मुछ्रदे हो, दलितों व शोषितों के दमन के सवाल हों। हालॉकि यहाँ भी उनकी अपनी सीमाएं हैं, वही सीमाएं जो उस समय के एक अभिजातीय व्यक्ति की ईमानदार राष्ट्रवादी में बदलने की थीं। इसके अलावा गोपाल दत्त भट्रट 1940 में गरूड़ अल्मोड़ा में जन्म हुआ। चारु पांडे की कविता पुस्तक अंग्वाल भी सामजिक कुरीतियों और सुधार व गांधी मार्ग के साथ चलने का आग्रह करती कविताएँ हैं। धरतीक पीड़ 1982 गोपाल दत्त भट्ट का प्रथम संकलन है। इनकी कविताओं में राष्ट्रीय चेतना, देश भक्ति तथा सामाजिक चेतना दिखाई देती है। भवानी दत्त पंत दीपाधार 1942 ई0 प्रमुख कवि गीतकार हैं तथा प्रसिद्ध गायक हीरा सिंह राणा 1942 ई0 उत्तराखण्ड की सांस्कृतिक चेतना के प्रमुख कवि है,गिरीश तिवारी गिर्दा के रचनाकर्म के हिंदी के ख्यातिलब्ध कवि मंगलेश डबराल ने कहा था 'क्रान्तिकारी चेतना और व्यंग्य की पैनी धार से लैस इन कविताओं में देश – विदेश के कई जनकवियों की आवाजें भी घुली –मिली हैं। लोर्का, पाब्लो नेरूदा, नाजिम हिकमत, एर्नस्तो कार्देनाल, फैज अहमद फैज ऐसे कवित हैं, जिनके सरोकारों की ओर गिर्दा बार-बार लौटते हैं और यह कहने की इच्छा होती है कि गिर्दा पहाड़ के नागार्जुन हैं। गिदा का व्यक्तित्व भी नागार्जुन से बहुत मिलता है। उसी तरह की फकीरी, फक्कड़पन यायावरी और समाज से गहरा लगाव। अपने जन की नियति बदलने की निरंतर कोशिश हैं, यथास्थिति के पोषकों के प्रति लगातार कटाक्ष है और मनुष्यता के लिए एक ऐसी आशा है, जो तमाम दुखों – अभावों से पार पा लेती है। गिर्दा और नागार्जुन की अनेक कविताओं में एक जैसे सरोकार ही नहीं हैं, कहीं- कहीं उनकी संरचना भी एक जैसी दिखती है' कुमाउनी लिखित साहित्य में शेरदा अनपढ़ के रचनाकर्म अपना स्थान है वे कुमाउनी आमजन मानस के कवि थे जो हास्य मव्यंग में बड़ी बड़ी बातें लिखने में माहिर थे विद्वानों ने उन्हें कुमाउनी साहित्य कबीर भी कहा इसके

साथ ही बालम सिंह जनौती व जगदीश जोशी तक का मौखिक लेखन अपने समाज के बदलाव और राज्य आन्दोलन के साथ साथ अब तक हुए महत्वपूर्ण सामाजिक अंतसबंधों को देखा जा सकता है। गद्य साहित्य में श्री बन्धु बोरा की कहानियां और जगदीश जोशी की कहानियाँ अपने समाज का ज्वलंत दस्तावेज प्रस्तुत करती है।

बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

5. मुलुकिया यारो कलयुग देखो। किसकी लिखित पंक्ति है

क. गुमानी

ख. गंगादत्त उप्रेती

ग. गौर्दा

घ. गिर्दा

उत्तर – ख

6. अंग्वाल किस विधा का में लिखी गई पुस्तक है

क. कहानी

ख. कविता

ग. यात्रा

घ. संस्मरण

उत्तर – क

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. कुमाउनी लिखित साहित्य में वर्णित कुमाउनी समाज पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

3.4 सारांश

इस इकाई को पढने के पश्चात आप

- समाज और साहित्य के अंतर्संबंध को जान चुके होंगे

- समाज और साहित्य के अंतर्संबंध की वैचारिकी से परचित हो चुके होंगे
- कुमाउनी साहित्य में वर्णित समाज लिखित साहित्य और मौखिक साहित्य किस तरह प्रतिविम्बित हुआ है इस बारे में जान चुके होंगे

3.5 शब्दावली

रहवासियों- मूल निवासी

बखड़वा या बखड़न्या- मुख्य गायक

मैंतुरा देश- माईका

सिरतान- भूस्वामियों के बटाईदार

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क
2. क
3. क
4. क
5. ख
6. क

3,7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. साहित्य का सामजशास्त्र बच्चन सिंह – पृष्ठ सं -2-3
2. साहित्य का सामजशास्त्र बच्चन सिंह – पृष्ठ सं -4 -5
3. महिला समाख्या माटी से मंच तक . स्त्रियों के गीत , पृष्ठ संख्या -5
4. कुमाउनी लोक संस्कृति विविध आयाम: अनिल कार्की पृष्ठ संख्या - 35
5. महिला समाख्या माटी से मंच तक . स्त्रियों के गीत , पृष्ठ संख्या -36

3.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. कुमाउनी लोक साहित्य एवं कुमाउनी साहित्य, देवसिंह पोखरिया, प्रकाशन श्री अल्मोड़ा बुक डीपो, अल्मोड़ा
2. शिखरों के स्वर, संपादन गिरीश तिवारी गिर्दा , दुर्गेश पंत, पहाड़ परिक्रमा, तल्लाडांडा, तल्लीताल नैनीताल – 263002
3. छोड़ो गुलामी खिताब, चारुचंद पांडे , पहाड़ परिक्रमा, तल्लाडांडा, तल्लीताल नैनीताल – 263002
4. कहै गुमानी, उमा भट्ट, प्रकाशक परिक्रमा तल्लाडांडा, तल्लीताल, नैनीताल – 263002

5. कुमाउनी भाषा और उसका साहित्य , डॉ० त्रिलोचन पाण्डे श्री अल्मोड़ा बुक डीपो, अल्मोड़ा
6. कुमाउनी भाषा और साहित्य का उद्भव विकास , प्रो० शेर सिंह बिष्ट, अंकित प्रकाशन , हलद्वानी
7. कुमाउनी लोक संस्कृति के विविध आयाम , अनिल कार्की, समय साक्ष्य प्रकाशन, देहरादून
8. उत्तराखण्ड का लोक साहित्य और जन- जीवन , डॉ सरला चंदोला , तक्षशीला प्रकाशन अंसारी रोड, दरिया गंज नई दिल्ली
9. कुमाउनी का लोक साहित्य, डॉ त्रिलोचन पांडे
10. साहित्य का समाजशास्त्र . बच्चन सिंह
11. Cultural Labour Conceptualizing the 'Folk Performance' in India, ब्रह्म प्रकाश, ऑक्सफोर्ड प्रकाशन

3.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. कुमाउनी मौखिक साहित्य में वर्णित समाज का वर्णन कीजिए.
2. कुमाउनी लिखित साहित्य में वर्णित समाज का वर्णन कीजिए.

इकाई -4 कुमाऊँनी का लिखित पद्य साहित्य

इकाई की रूपरेखा

4,1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 लिखित पद्य साहित्य की पूर्व पीठिका

4.4 कुमाऊँनी का लिखित पद्य साहित्य का सामान्य परिचय

4.5 तत्कालीन समाज और कुमाऊँनी का लिखित पद्य साहित्य

4.6 सारांश

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

4.9 उपयोगी ग्रन्थ

4.10 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

कुमाऊँ शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में भिन्न –भिन्न धारणाएं प्रमुख हैं – ''(1) कुमू या कुमाऊँ शब्द कुर्मांचल का तद्भव है। अल्मोड़े के दक्षिण पूर्व में चंपावत के निकट कानद्यो नामक पर्वत है, जिसका आकार कूर्म जैसा है , इस पर्वत शिखर की उँचाई सात हजार फिट है। किंवदंती है कि भगवान विष्णु ने कूर्म अवतार के समय इस पर्वत शिखर पर तीन हजार वर्ष तक तपस्या की थी। इसी कूर्म के नाम से इस पर्वत के आस-पास का भू-भाग कूर्मांचल कहलाया। बाद में सम्पूर्ण कुमाऊँ क्षेत्र के लिए यह शब्द कूर्मांचल या कुमाऊँ के रूप में व्यवहार होने लगा। कूर्म से कुमू या कूर्मांचल से कुमाऊँ शब्द का विकास निम्न रूप से हुआ। 1. कूर्मांचल-कुम्माअओ-कुमओ-कुमऊ/कुमू/कुमी/ कुमाऊँ 2. कूर्म-कुम्म-कुमूँ/कुभी/ कुमाऊँ। (2) इस क्षेत्र के लोग खूब 'कमाऊ' हैं इसलिए इस क्षेत्र का नाम 'कमाऊ' या 'कुमाऊँ' पड़ा। (3) 'कालू वजीर' के नाम से इस क्षेत्र का नाम कुमाऊँ पड़ा। राजा ज्ञानचंद के दरबार में कालू वजीर का वर्णन आता है। कालू से इस क्षेत्र का नाम 'कालि कुमूँ' पड़ा , जो बाद में केवल 'कुमूँ' भी कहा जाने लगा। इसी 'कुमूँ' शब्द का विकास कुमाऊँ के रूप में हुआ। (4) एक कुमाउँनी लोग गाथा के अनुसार, त्रेता युगा में रावण के भाई कुम्भकरण की खोपड़ी राम के वाणों से कटकर इसी क्षेत्र में गिरी थी, जिससे वहॉ एक तालाब निर्मित हो गया था। कालान्तर कुम्भकरण के नाम के आधार पर इस क्षेत्र का नाम 'कुमूँ' चल पड़ा।''[1]

''हजारों हजार साल की उम्र वाले कुमाउँनी साहित्य का नागर रूप दो सौ साल से भी कम पुराना है। लोकरत्न गुमानी से प्रारम्भ, कृष्णा पाण्डे (1800-1850), शिवदत्त सती (1848-1910) द्वारा आगे बढ़ी। यह काव्य परम्परा गौर्दा (1872-1939) के समय अपनी यादगार ऊँचाईयों तक पहुँची। तब से अब तक कुमाउँनी काव्य परम्परा की निरंतरता बनी हुई है।''[2]

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के बाद आप –

1. कुमाऊँनी के लिखित पद्य साहित्य और कवियों को हृदयगंम कर सकेंगे।
2. कुमाऊँनी के विविध कालखण्ड के कवियों की काव्य परम्परा का परिचय प्राप्त कर सकेंगे

4.3 लिखित पद्य साहित्य की पूर्व पीठिका

सामान्यत: कुमाऊँ में लोकरत्न गुमानी से पूर्व लोक-साहित्य मौखिक परंपरा में समृद्ध और प्रचुर मात्रा में था, इसके प्रमाण आज भी यहाँ के जनजीवन और कामगार मेहनतकशों, किसानों, ग्वालों एवं घरिसारों व पोषित पति की पतिकाओं के कंठों में गूँज रहा है, जिसकी अनुगूँज से आज भी आम जनमानस श्रम के सौंदर्य को गीतों में रूपायतित करता है। हजारों साल पहले से उत्तराखंड कुमाऊँ में कला, संगीत व साहित्य यहॉ के जन-जीवन का अमूल्य औजार रहा है। कला के क्षेत्र में आदिम भित्ति चित्र गुफा में लखुउडयार इसका उत्कृष्ट नमूना है, तो जागर, संगीत और उसके

आदिम रूपों का श्रेष्ठ नमूना इसलिए बिना उत्तराखंड के लाक –साहित्य को समझे हम उत्तराखंड की काव्य परंपरा का मूल्यांकन नहीं कर सकते, क्योंकि कालान्तर में उत्तराखंड के कवियों ने अपने लोक-साहित्य से ही स्थानीय चेतनाओं को ग्रहण करके, उन्हें विराट जनमानस तक लिपिबद्ध कर पहुँचाया। भले ही साहित्य की स्थानीयता कितनी ही सीमित क्यों न हो, लेकिन उसकी चेतना वैष्विक चेतना के साथ कदम-से-कदम मिलाकर चलने में सक्षम है इसीलिए कुमाऊँ का जिक्र पुराणों एवं वेदों में तो है ही, लेकिन साथ ही पृथ्वीराज चौहान से लेकर सूफी कवि जायसी तक सभी के साहित्य में कहीं –न –कहीं मिल जाता है। चन्दवरदाई कृत पृथ्वीराज रासो (1225-1249 ई0) में कुमाऊँ शब्द का प्रयोग हुआ है, उदाहरण के रूप में ये पंक्तियॉ उद्धृत की जा रही हैं –

''सवलष्प उत्तर सयल, कुमाऊँ गढ़ दूरंग।

राजतराज कुमोदमणि हय गय द्रिब्ब अभंग ।।

अत: कहा जा सकता है कि कूर्मांचल या कूर्म शब्द का प्रयोग इससे भी पूर्व प्रचलन में रहा हेागा , जिसका अपभ्रंश रूप 'कुमाऊँ' कवि चंद वरदायी द्वारा प्रयुक्त हुआ है। भक्ति काल के कवियों में मलिक कुहम्मद जायसी कृत 'पद्मावत' (1540 ई0) तथा उसमान कृत 'चित्रावली' (1613 ई0) में कुमाऊँ का उल्लेख मिलता है। रीतिकाल में महाकवि भूषण (1673 ई0) की रचनाओं में भी 'कुमाऊँ' का उल्लेख हुआ है।''[3] अनवरत युद्धों, आपसी टकरावों के बावजूद मौखिक साहित्य तो बना रहा, लेकिन लिखित साहित्य का अभाव खस, कत्यूरी और चंद राजाओं के शासन काल तक विकसित नहीं हो पाया, क्योंकि अभिजात वर्ग की भाषा संस्कृत थी। कुमाउँनी का प्रयोग केवल संपर्क भाषा के रूप में हुआ, बल्कि यह भी कह सकते हैं कि कुमाउँनी कालीपार व काली वार (नेपाल-भारत) के नागरों की आपसी भाषा थी। लेकिन संस्कृत के लिये यहॉ के लोग खासकर एक वर्ग विशेष विद्याध्ययन के लिए काशी, बनारस, लखनऊ, इलाहाबाद पहुँचे। अंग्रेजी शासन काल के दौरान यहॉ के लोगों की जातीय अस्मिताएं व स्व का जागरण हुआ। अंग्रेजों को भी राज-काज चलाने के लिए आम नागरिकों की भाषा कुमाउँनी सीखने की आवश्यकता पड़ी। इस चेतना बोध से लैस कवि ने जब यहॉ के अभाव, प्रकृति, जनजीवन को व्यक्त करने के लिए कलम उठाई तो कुमाउँनी लिखित साहित्य का अंकुरण हुआ। इस तरह से गुमानी पहले प्रारंभिक कवि थे। मूलत: गंगोलीहाट निवासी गुमानी ने अपने इलाके की आत्मीय छवि प्रस्तुत करते हुए लिखा –

''केला, निम्बू, ओखड़, दाड़िम, रेखू, नारिंग, आदो, दही।

खासो भात जमोलि को, कलकलो भूना गडरी गवा,

च्यूड़ा सद्य उत्यलो दूध बाकलो घ्यू गाय को दाड़े दार।

खानि सुन्दर मोडियों धबडुबा गंगावलि रौणियॉ।।''[4]

4.4 कुमाऊँनी का लिखित पद्य साहित्य का सामान्य परिचय

डॉ0 देवसिंह पोखरिया के अनुसार, परिनिष्ठित साहित्य परंपरा को चार भागों में विभाजित किया गया है –

प्रारंभिक युग (सन् 1800 – 1850 ई0 तक

पूर्व मध्ययुग (सन् 1850 – 1900 ई0 तक

उत्तर मध्ययुग (सन् 1900 से 1950 ई0 तक

आधुनिक युग (सन् 1950 से आज तक

उत्तराखण्ड कुमाऊँ के प्रारंभिक युग (सन् 1800 – 1850 ई0) इस युग में गुमानी और कृष्णानंद पाण्डे प्रमुख कवि हैं। इसके तत्पश्चात पूर्व मध्य युग (सन् 1850 – 1900) में चिंतामणि जोशी की प्रमुख रचनाएं दुर्गा पाठ सार तथा सत्य नारीयण कथा और भगवद्गीता हैं। इसी युग के दूसरे कवि है नैन सुख पाण्डे , जिनका जन्म- मृत्यु का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। गौरीदत्त पाण्डे बल्दी गाड़ निवासी कवि भी महत्वपूर्ण हैं। माना जाता है कि यह गुमानी की परंपरा के कवि थे। इस युग के सबसे सशक्त स्वर हैं – शिवदत्त शर्मा, जिनकी आठ रचनाओं का प्रकाशन हुआ, जिनमें भाभर गीत एवं धसियारी नाटक प्रमुख है। इसके अलावा इस युग में दो अन्य कवियों के नाम भी पता चलते हैं, दिवान सिंह और लीलाधर जोशी।

उत्तर मध्ययुग (सन् 1900 – 1950 ई0 इस युग जिसके प्रमुख कवि हैं, गौरी दत्त पाण्डे गौर्दा (1872 – 1939 ई0)। गौर्दा को कुमाऊँनी साहित्य का स्वर्ण शिखर भी कहा जाता है। राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत यह कवि नव जागरण एवं राष्ट्रीय आंदोलन में उत्तराखंड का प्रतिनिधित्व करता कवि है। इनका संग्रह ''गौरी गुटका'' नाम से संग्रहित है। इसके बाद पंडित शिरोमणि पाठक (1890- 1955) तथा पिथौरागढ़ के मुजौली ग्राम में जन्में श्री लालमणि उप्रेती (1900 – 1963) प्रमुख हैं। इस क्रम में छायावाद के प्रमुख कवि सुमित्रानंदन पंत (1900-19977ई0) ने भी कुमॉऊनी में रचना की , लेकिन उनकी एक ही कविता कुमॉऊनी में प्राप्त होती है, जिसका नाम है 'बुरूँश'। इसके बाद पंडित श्यामादत्त पंत (1901-1967ई0) प्रमुख हैं, जिनका जन्म रानीखेत में हुआ। इन्होने हिंदी और कुमॉऊनी दोनों में रचना लिखी, इनके काव्य संग्रह का नमा है 'दातुलैधार' जो समसामयिक विषयों पर लिखी गई कविताओं का संग्रह है। तुकबंदी और मनोरंजन की दृष्टि से भी इन्होने 'क सुवा कथ क' जैसी सामाजिक यथार्थ की कविताएं लिखीं हैं। तत्पश्चात् कविराज रामदत्त पंत (1902- 1968ई0) प्रमुख कवि हैं। इनकी प्रमुख रचनाएं 'गीत माला, 'गांधी गीत', 'गीतबाद' और 'क्वीण कैण' हैं। चंद्र लाल चौधरी इस युग के प्रमुख कवि हैं। इसके अलावा बचीराम, हीराबल्लभ शर्मा, मथुरादत्त पाण्डे डियर, पिताम्बर पाण्डे, चंद्र सिंह तड़ागी, भोलादत्त भोला, पूर्णनंद भट्ट , चिंतामणि पालीवाल तथा जंयति पंत इय युग के प्रमुख कवि हैं। इस आधार पर कहा जा सकता है कि कुमॉऊनी की कविता परंपरा स्वयं में भी पूरी सम्पूर्ण – कविता परंपरा है, जिसका विकास अनवरत रूप से आज भी कुमॉऊनी जनमानस के अन्तर्विरोधों एवं संघर्षों को स्वर दे रहा है और आगे भी देता रहेगा। आधुनिक युग 1950 से अब तक इस युग के कुमॉऊनी साहित्य पर इन सबका गहन प्रभाव पड़ा। अनेक साहित्यिक मतवादों ने भी इसे प्रभावित किया। कुमॉऊनी का परंपरागत कथ्य और षिल्प इस युग में आकर टूट गया। यद्यपि आधुनिक युग के प्रथम दशक तक पूर्ववर्ती साहित्यिक प्रवृत्तियों का ही प्राधान्य रहा।

आधुनिक युग के आरम्भ में कुछ रचानाकार उत्तरमध्य युग से ही रचना करते आ रहे थे। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में देवीदत्त पंत 'हुड़किया' नरसिंह हीत बिष्ट, लक्ष्मीदेवी, मथुरादत्त जोशी, नित्यानंद बिष्ट, नारायण राम आर्य, भवान सिंह मेहता, गंगासिंह बिष्ट, लक्ष्मीदेवी , मथुरादत्त जोशी, नित्यानंद बिष्ट, नारायण राम आर्य, गोविंद शर्मा,

आनंद सिंह हरि सिंह, बचीराम आर्य, श्रीकृष्ण पंत (बचीराम) , बचेसिंह पटवाल, केशवदत्त पाण्डे, मथुरादत्त बेलवाल, दामोदर उपाध्याय, रामकुँवर रौतेला गुँसाई, बागगिरि , भवानी राम, पातेराम शर्मा, ख्यालीराम शिल्पकार, कुलायंद भारतीय , शिवदत्त शर्मा, गुलाबसिंह, चंदनसिंह, करम सिंह भंडारी, पूरन चंद्र जोशी, नित्यानंद जोशी , कैलाश उप्रेती , ताराराम आर्य, चंद्रशेखर, हरीसिंह, स्व0 मोहन सिंह डोलिया, गोपाल बाबू गोस्वामी , बहादुर बोरा 'श्री बंधु' आदि रचनाकारों ने अपनी कृतियों से कुमॉऊनी साहित्य की भी वृद्धि की है।

आधुनिक युग के सशक्त रचनाकारों में चारू चंद्र पांडे, गोपाल दत्त तिवाड़ी, ब्रजेन्द्र साह, पूरनसिंह नेगी, नंदकुमार उप्रेती , शैलेख मटियानी, वंशीधर पाठक 'जिज्ञासु', शेरसिंह बिष्ट 'अनपढ़', गोपाल दत्त भट्ट , हीरासिंह राणा, गिरीश तिवाड़ी, भवानी दत्त पंत 'दीपाधार', श्रीमती देवकी महरा, सैमुअल माधोसिंह, दुर्गेश पंत, सुरेश पाण्डे , जुगल किशोर पेटशाली, राजेन्द्र बोरा, बालमसिंह जनौटी, मथुरादत्त , महेन्द्र मटियानी, जगदीश जोशी आदि के नाम प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।''[5] लेकिन हम यहाँ केवल प्रमुख कुमॉऊनी कवियों का ही सार संक्षेप वर्णन करते हुए उनकी कविताओं के सामाजिक सरोकारों पर प्रकाश डालेंगें।

बोध प्रश्न –

प्रश्न 1 - कुमाऊँनी का लिखित पद्य साहित्य संक्षिप्त परिचय दीजिए

नीचे दिए गए बहुविकल्पी प्रश्नों के उत्तर लिखिए

क. डॉ0 देवसिंह पोखरिया के अनुसार, परिनिष्ठित साहित्य परंपरा को चार भागों में विभाजित किया गया है

क़ – 2

ख – 4

ग – 5

घ – 6

ख – 'गौरी गुटका' नाम से किस कुमाउनी कवि की कविताओं का संग्रह है

क – श्यामचरण पन्त

ख – चारु चंद पांडे

ग – सुमित्रानंदन पंत

घ – गौरीदत्त पांडे 'गौर्दा'

4.5 तत्कालीन समाज और कुमाऊँनी का लिखित पद्य साहित्य

प्रारंभिक युग (सन् 1800 – 1850 ई0 तक)

नोक रत्न पंत गुमानी (1790 -1846) उस युग के रचानाकार थे, जब पश्चिम में अमेरिका की राज्य क्रांति तथा फ्रांस की सामाजिक क्रांति हो चुकी थी और औद्योगिक क्रान्ति पूरे पश्चिमी यूरोप को नियंत्रित करने जा रही थी। यूरोप की राज्य व्यवस्थाएं साम्राज्यों और उपनिवेशों को अधिकार में कर रही थी और भारत देश छोटी –छोटी क्षेत्रीय ताकतों में विभाजित हो गया था। अभी हिमाल में औपनिवेशिक शासक नहीं पहुँचे थे, प्रदेश में उनका वर्चस्व कायम हो चुका था। यह संयोग रोचक है कि जिस साल गुमानी का जन्म हुआ उसी साल गोरखा शासकों ने कुमाऊँ पर अधिकार किया और यूरोप में नेपोलियन का युग शुरू किया। जब गुमानी ने लिखना शुरू किया होगा तब तक कुमाऊँ में गोरखें के स्थान पर ईस्ट इंडिया कम्पनी का आगमन हो चुका था। गार्डनर, ट्रेल या फिर लसिंग्ट्रन कमिश्नरों का युग चल रहा था। पूर्व शासकों के समय प्रचलित बहुत सी शोषक उत्पीड़क प्रथाएँ जारी थीं। साथ ही गोरखों के मुकाबले कम्पनी शासन को उदार मानने का भ्रम भी मौजूद था। उस युग में गुमानी ने जो भी लिखा उसका जितना भी हिस्सा बचा है, उसके आधार पर उसे नकारना संभव नहीं है।'

गुमानी की कविता में पर्वतीय अभिजन जीवन का स्वाभाविक चित्रांकन हुआ है। विद्वान् मानते है कि गुमानी ने हलवाहा, विधवा एंव सामान्य पहाड़ी जन का सहज और आमीय चित्रण किया है। डॉ0 शेखर पाठक सामाजिक चेतना की दृष्टि से गुमानी में कथ्य की शिथिलता पाते हैं। किंतु डॉ0 भगत सिंह उन्हें प्रथम राष्ट्रीय कवि मानते हैं। गियर्सन गुमानी को कुमॉऊनी का प्रथम कवि स्वीकार करते हैं और इधर अधिकांश समीक्षक उन्हें हिंदी खड़ीबोली के प्रथम कवि का दर्जा देते हैं।

राज बड़ा दशरथ की बुआरी,
कन्या पनी भूप बड़ा जनक की।
क्या भंदिहन रावन बस परया की,
हा राम हा देवर तात मात:''[7]

गुमानी की कविताओं में जहाँ एक ओर जनमानस की यथास्थिति का वर्णन गोरखा राज की क्रूरताएं देखने को मिलती हैं, वहीं वह सचेत रूप से अंग्रेजों की शासन व्यवस्था और उनके स्वभाव को भी अपनी कविता में चित्रित करते हैं वे बहुत विद्रोही या देशभक्त कवि नहीं कहे जा सकते। बावजूद लिखित कुमाऊँनी पद्य साहित्य के गुमानी प्रथम कवि हैं। हालांकि कई लोगों का मानना है कि गुमानी से पूर्व नाथमत के साधुओं ने कुमाउनी में लेखन किया परन्तु अभी इस तरह के पुख्ता प्रमाण नहीं प्राप्त हुए हैं।

''दूर विलायत जल का रस्ता करा जहाज सवारी है
सारे हिन्दुस्तान भरे की धरती वस कर डारि हैं,
और बड़े शाहों में सब में धाक बड़ी कुछ भारती हैं,
कहैं गुमानी धन्य फिरंगी तेरी किस्मत न्यारी है।''[8]

इस युग के दूसरे प्रमुख कवि कृष्णानंद पाण्डे माने जाते हैं। इनका जन्म 1800 में अल्मोड़ा के पाटिया गॉव में हुआ। गुमानी द्वारा स्थापित कुमॉऊनी काव्य परंपरा को एक तरह से इन्होंने ही आगे बढ़ाया था। इनकी कविताएं पुस्तकाकार में नहीं मिलती । गंगादत्त उप्रेती ने इनकी रचनाओं का संग्रह और अनुवाद किया । 1910 ई0 में ग्रिर्यसन ने इनकी कविताओं का प्रकाशन 'इंडियन एन्टिक्वैरी' में किया । इनकी कविता में भक्ति, समाज सुधार, व्यंग्य-विनोद पूर्ण कविताएं मिलती हैं । युगीन सामाजिक एवं राजनीतिक विषमताओं पर भी इन्होंने करारी चोट की। इनकी मृत्यु 50 वर्ष की अवस्था में सन् 1850 वर्ष में हुई । उनकी 'मुलुक कुमाऊँ' तथा 'कलयुग वर्णन' कविताएं उन्नीसवीं सदी के आरंभिक कुमॉऊनी समाज का व्यापक सॉचा खींचती हैं। देखें –

''मुलुकिया यारो कलयुग देखो।
घर – कुडि बेचि बेर इस्तीफा लेखो ।।
बद्री – केदार बड़ भया धाम।
धर्म – कर्म की कै न्हाती फाम ।।''[9]

पूर्व मध्ययुग (सन् 1850 – 1900 ई0 तक)

इस युग के प्रमुख कवि चिन्तामणि ज्योतिषी तल्ला दन्या अल्मोड़ा (सन् 1874 -1934) हैं। इन्होंने सन् 1897 में दुर्गा (चंडी) पाठसार को कुमॉऊनी भाषा में अनुवाद किया । इनके उपलब्ध कुमॉऊनी अनुवाद हैं – सत्यनारायण कथा तथा भगवद्गीता । नैन सुख पाण्डे पिलखवा गांव के निवासी थे । इनकी मृत्यु और जन्म के बारे में विद्वान केवल यह मानते आये हैं कि इनका जन्म 1850 के बाद ही हुआ होगा । इनकी कुछ कुमॉऊनी स्फुट रचनाएं मिलती हैं। इनकी एक रचना है, जिसमें इन्होंने घरेलू काम धंधों में आने वाले औजारों का वर्णन किया है। गौरी दत्त पाण्डे के जीवन के बारे में भी विद्वानों को बहुत कुछ पता नहीं है, परंतु यह माना जाता है कि ये उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक विद्यमान थे ।

शिवदत्त सती शर्मा का कुमॉऊनी साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान है। इनका जन्म 1848 में फलदाकोट अल्मोड़ा में हुआ । ये बचपन से कृषि कार्य से जुड़े रहे । अन्धविश्वासों से दूर समाज सुधार के प्रबल समर्थक थे। इनकी आठ रचनाओं का उल्लेख विद्वान प्राय: करते हैं । मित्र विनोद, घसियारी नाटक, गोपी गीत, बुद्धि प्रवेश भाग – 1, बुद्धि प्रवेश भाग – 2, बुद्धि प्रवेश भाग-3 , रूक्मणि विवाह, प्रेम और मोह । घसियारी नाटक में पहाड़ी जन जीवन की कठिनाईयों और अंग्रेजों द्वारा किये जाने मनमाने व्यवहार और उत्पीड़न को नाटकीय शैली में प्रस्तुत किया है। गोपी देवी का गीत में स्त्री जीवन और उसके वैविध्य का कारूणिक चित्रण हुआ है। बांकी संकलनों में बुद्धि प्रवेश एक, दो, तीन जनहित में हिंदी और कुमॉऊनी गीतों का संकलन है। कई विद्वान इन्हें कुमानी गजल लिखने की परम्परा का प्रथम कवि भी कहते हैं ।

''हमार कैबेर धर्ममैकि बात छिपाई निजानी ।

सॉचि बात झुटि लै यो बताई नि जानी ।।''[10]

उत्तर मध्य युग (सन् 1950 से आज तक)

गौर्दों का जन्म अगस्त 1872 अक्टूबर में हुआ। गौर्दा का साहित्य कुमॉऊनी साहित्य का स्वर्णिम शिखर है। उनकी चेतना और साहित्यिक समझ को कुमॉऊनी साहित्य में कोई नहीं छू पाया है। गौर्दा एक ऐसे समय की उपज थे, जब एक

तरफ भारतीय राष्ट्रवाद का उदय हो रहा था और दूसरी ओर स्थानीय जन आन्दोलन स्फूरित हो रहे थे। गौंर्दा की चेतना इसी युग में निर्मित हुई। ''गौर्दा उन कवियों में हैं, जिन्होंने अपने वर्ग से सीधी मुठभेड़ की। 'गौं कि रानौ या आपु जैसि मैं करो, या मैं जैसि तुम है जाओ' ऐसी चुनौती अपने तथाकथित बुद्धिजीवी कहलाने वाले पाखंडी अभिजन समाज को जो वैचारिक बांझपन से ग्रस्त था गौर्दा ही दे सकते थे। उनके कुमाउनी लेखन को पढ़ते हुए हिंदी के कवि निराला याद आते हैं। गौंर्दा की यह घोषणा उस समय की है, जब बारातों और उत्सवों में गरीब आदमी को अपनी जमीन गिरवी रखकर पिठावां या दक्षिणा देनी पड़ती थी। वह अपने इस पाखंडी वर्गों से एक सिपाही की तरह लड़ा। इस दोहरे चरित्र की धज्जियां उड़ाई और बखिया उधेड़ दी। गौर्दा अपने समय की जटिलताओं, आन्दोलनों के सच्चा सिपाही था। वह अपनी तरह से अपनी युगीन समस्याओं से टकराये। चाहे वह शारदा एक्ट हो, कुली उतार हो, स्वराज के आन्दोलन हों या जातिगत मुछ्रदे हो, दलितों व शोषितों के दमन के सवाल हों। हालॉकि यहाँ भी उनकी अपनी सीमाएं हैं, वही सीमाएं जो उस समय के एक अभिजातीय व्यक्ति की ईमानदार राष्ट्रवादी में बदलने की थीं। इस प्रारंम्भिक राष्ट्रवादी माहौल में अपने देश और क्षेत्र के प्रति व जन के प्रति गौर्दा में वह ईमानदारी दिखाई देती है।

गौर्दा की यह चेतना व्यक्ति और जाति का अतिक्रण करती हुई पहाड़ी नदी की तेज धार में बहती हुई रूढ़ियों और अंधविश्वासों को बहा देती है। इस आधार पर जल, जंगल और जमीनों का यह कवि कुमाँऊनी कविता का ध्रुव तारा है, यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी। यदि कुमॉऊनी कविता में पुनर्जागरण और आधुनिकता की शुरूआत होगी तो गौर्दा इसके पहले कवि होंगे और अने वाले समयों पर उनकी कविता की सदैव आँख रहेगी।''[11] इसी आशय में उनकी कविता 'समता धरणी चैंछ सबन कैं' शीर्षक के अन्तर्गत लिखा गया है –

''समता धरणी चैंछ सबन कैं।
राजा – परजा, ग्वार-कालन कैं।
वी पछिला द्विजजन हरिजन कैं।''[12]

''एक ऐसा कवि जो अपने वर्ग से इतने भयानक रूप से टकराता है शायद हिंदी साहित्य में निराला ही ऐसे दूसरे कवि होंगे, जिनके साहस की तुलना हम 'गौर्दा' से कर सकते हैं। हमारी कविता धारा का यह अप्रतिम कवि हमारे पूरे लोक को जिस एकता अखंडता के साथ अपनी कविता में व्यक्त करता ळे, वह उस विराट और महान दुनिया के प्रति आश्वस्त करती हैं, जिसका स्वप्न आज भी हमारे लोग देख रहें हैं, जिसे एक न एक दिन पूरा होना ही है।

जाति से अभिजन यह ऐसा पहला कवि भी है, जिसने अपने नाम पर 'दा' शब्द लगाया। पहाड़ में 'दा' और दाज्यू (बडे भाई के लिए इस्तोमाल होते हैं) पर दोनों की ही तासीर एकदम भिन्न है और अर्थ में भी दोनों शब्द भिन्न हैं। हालॉकि अब यह शब्द सामान्य रूप से प्रचलित है। किसी समय इस 'दा' शब्द कहने के पीछे एक सचेत किस्म की जातीय अभिजातियता रही है। यह 'दा' शब्द आज भी मूल रूप से यहॉ के 'हलियों' (हल जोतने वालों), ल्वारों (लोहे का काम करने वालों), ढोलियों (ढोल बजाने वालों), औजियों (कपड़ा सिलने वालों व निचली जातों के उन मेहनतकश लोगों के लिए इन अभिजातीय फिरकों द्वारा इस्तेमाल किया जाता है।''[13] इसी 'दा' शब्द को कालांतर में गिर्दा और शेरदा ने भी अपने उपनामों के माध्यम से व्यक्त करते हुए गौर्दा की चेतना को आगे बढ़ाया।

इससे सहज की पता चलता है कि गौर्दा की चेतना आखिर किस पक्ष की है। गौर्दा की इस परंपरा में कुमॉऊनी कविता के लिए आधुनिक युग में जिन दो लोगों ने 'दा' शब्द का इस्तेमाल किया, उनकी कविता भी गिर्दा की काव्य चेतना की अगली कड़ी ही है, जिनमें गिर्दा तो गौर्दा को अपना कविता उस्ताद मानते थे , बल्कि शेरदा अनपड़ की कविता की बनक भी गौदा की काव्य परंपरा से ही चेतना लेती है।

गौर्दा जिन मुद्दों पर अपनी कलम चलाया करते थे यह मुद्दे आज भी कितने प्रासंगिक और कितने महत्वपूर्ण हैं। स्थानीय चेतना से लेकर राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय चेतना को अपनी कविता में समेटने वाला यह कवि वैश्विक ग्लोबल गांव की कल्पना से पूर्व ही अपनी कविता में एक विश्व रचने में माहिर है।

जहॉ गौर्दा ने जातिप्रथा, छूआछूत आदि पर तीखे व्यंग्य किए, वहीं वह तत्कालीन दौर का समर्थ राजनीतिक कवि भी है। 'गोलमेज परिषदों की असफलता को कितने अर्थ भरे शब्दों में गूढ व्यंग्योक्ति के सहारे कवि ने प्रकट किया यह दर्शनीय है -

यस स्वराज्य मिलाणों, जस कुकरा को ब्याणों।
देखण में दनमन धिनाली कि हूँछ, काम की नै कुछ जाणों।
सब कुछ तुमरो –हात झन लगया – तस ऊ मंत्रि बुलाणों।

(सब कुछ तुम्हारा है, मगर छूना मत, ऐसा वह मंत्री बोला। ऐसा स्वराज्य मिला जैसे कुतिया ब्याई-प्रसस्थ दूध, सब बेकाम)'' [14]

गौर्दा ने चाय लाला, कतवा, गलहार बंधे मातरम्, बुडज्यू गांधीज्यू, सुन्दर सुकीला मुसा, दे हो स्वराज्य बिहारी, तू खेल गांधी, लगौ कपालि विभूत, जन होया हिकमत हार, पति राखिया, लुकुड़ा स्वदेशी बणा दि हालौ, धन हो स्वदेशी राई, कब राज ब्याली कब कौ कड़ालो, यसो स्वराज्य मिलाणों, जै जै बागनाथ, अगस्ति उदय, सुणिये विपति हमारी, हामारा गौ की काथा, अणहोति काला, बणि जनी सिरताज , लागि गोली कसी चोट, देश को संग जनै छोड़िया, भोट-भिक्षा, दीनी फसक बड़ी मार, होलि कसिकै खेलनू, अकाल प्रभाति उनकी प्रमुख रचनाएं हैं। साथ ही उन्होंने छोड़ो गुलामी खिताब जैसी युगीन प्रतिनिधि कविता लिखकर उस दौर में कुमाऊँ का प्रतिनिधित्व किया। उनकी कविता वृक्षन को विलाप प्रकृति के प्रति उनके लगाव का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। गौर्दा की कविताएं और उनकी विषय-वस्तु आने वाले समय में और प्रासंगिक होती जायेगी। स्थान विशेष क्षेत्र एवं देश की सीमाओं से पार अन्तर्राष्ट्रीय चेतना का कवि बना देती है। उनकी कविता मुर्दाक बयान का उदाहरण देखिए –

''जो दिन अपैट बतूँछी, वी मैं हूँ पैट हौ।
जकँ मैं सौरास बतूँछी, वी म्यर मैत हौ
मायाक मारगॉठ आज, आफी आफी खुजि पड़ौ।
दुनियल तराण लगैं दे, फिरि ले हाथ है मुचि पड़ौ।
जनूँ कैं मैंल एकबट्र्या, उनूँक मैं न्यार करूँ
जनूँ कैं भितरे धरौ, उनूँलैं मैं भ्यार धरूँ।

बेई तक आपण, आज निकाऔ निकाऔ हैगे ।
पराण लै छुटण नि दी, उठाऔ उठाऔ हैगे ।'' [16]

गोपाल दत्त भट्ट 1940 में गरूड़ अल्मोड़ा में जन्म हुआ । धरतीक पीड़ 1982 गोपाल दत्त भट्ट का प्रथम संकलन है। इनकी कविताओं में राष्ट्रीय चेतना, देश भक्ति तथा सामाजिक चेतना दिखाई देती है। अपने पर्वतीय क्षेत्र की कविताएँ भी इन्होनें लिखीं हैं, जिसमें बसंत, ऋतु चौमास की, सौंण आगो, रूपसा राजुलि जैसी, धरती ध्यापणि और अड़कसी दै तू प्रमुख कविताएँ हैं। उनकी उत्कृष्ट कविताओं में उनैन पीड़ केलेख, पाप छू जून हुण, भुखमारे तारे अमावस्या तक, चंद्रमा को पूरा को पूरा खा जायेगें, कथन भाव, प्रभाव की सृजना करता है ।

''अगासक चुलनउगै गो ग्यूक जौ वाट, जून पुन्योंक
पतणीनैं-औंणीं झपाव मारनै –
लाख-लाख नंग भुक तार
यौं अमूश जालैं
न्येई जाल, खै जाल
सारिं सारिं जून कैं,
तबत् कौनूँ,
पाप छू जून हुण पाप छू''[17]

इसके अलावा इस दौर के कवि मथुरादत्त मठपाल भी प्रमुख हैं। भवानी दत्त पंत दीपाधार 1942 ई0 प्रमुख कवि गीतकार हैं तथा प्रसिद्ध गायक हीरा सिंह राणा 1942 ई0 उत्तराखण्ड की सांस्कृतिक चेतना के प्रमुख कवि है।, जिनमें उनकी कविता मनखौं पड़याव 1987 , फूल टिपो टिपो हरै, बखत और हम, टंकाऔ घानी, बुस्यिल ढुँग, महेणि, हटिये माठू माठ प्रमुख कविताएँ हैं। गिरीश तिवाड़ी 'गिर्दा' का जन्म 9 सितम्बर, 1945 को अल्मोड़ा जिले के हवालबाग के ज्योली तलला स्यूनारा हुआ था। उन्होंने हाईस्कूल इण्टर कॉलेज अल्मोड़ा से किया । उनके द्वारा रचित रचनाएँ निम्न हैं :-

पहली किताब जंग किसके लिये (हिंदी कविताएं संकलित हैं) , दूसरी किताब जजैंता ए कदिन तो आलो (कुमाउँनी कविताओं का संग्रह है), इसके अतिरिक्त नगाड़े खामोश हैं, सल्लाम वालेकुम, शिखरों के स्वर (1969) हमारी कविता के ऑखर(1978) रंग डारी दियो अलबेलिन में (1999) के संपादक हैं । 1998 में उत्तराखण्ड काव्य का प्रकाशन हुआ । गिर्दा की कविताओं का रचना संसार 1960 – 61 से 2009 तक रचा गया है ।

जैाता एक दिन तो आलो के संबंध में मंगलेश डबराल का कहना है कि ''क्रान्तिकारी चेतना और व्यंग्य की पैनी धार से लैस इन कविताओं में देश – विदेश के कई जनकवियों की आवाजें भी घुली –मिली हैं । लोर्का, पाब्लो नेरूदा, नाजिम हिकमत, एर्नस्तो कार्देनाल, फैज अहमद फैज ऐसे कवित हैं, जिनके सरोकारों की ओर गिर्दा बार-बार लौटते हैं और यह कहने की इच्छा होती है कि गिर्दा पहाड़ के नागार्जुन हैं। गिदा का व्यक्तित्व भी नागार्जुन से बहुत मिलता है। उसी तरह की फकीरी, फक्कड़पन यायावरी और समाज से गहरा लगाव। अपने जन की नियति बदलने की निरंतर कोशिश हैं, यथास्थिति के पोषकों के प्रति लगातार कटाक्ष है और मनुष्यता के लिए एक ऐसी आशा है, जो तमाम दुखों – अभावों

से पार पा लेती है। गिर्दा और नागार्जुन की अनेक कविताओं में एक जैसे सरोकार ही नहीं हैं, कहीं- कहीं उनकी संरचना भी एक जैसी दिखती है।

''बहुत कठिन प्रश्न चयन/जिस पर सहमत सब जन
काल के कपाल पर सजे तिलक-चंदन/कंठ-कान-नाक-नयन
सब जिसके गिरवी हों/फिर भी हो खुला मिशन
मंथन की चिंता आसन सिंहान/बावन, त्रेपन, चौवन''

गिर्दा ने साहित्य जगत में अपना बहुमूल्य योगदान दिया है। यह संस्कृत कर्मी हैं , उन्होंने कुमाउॅनी, गढ़वाली मे गीत लिखे हैं, जिनमें उत्तराखण्ड आंदोलन, चिपको आंदोलन, झोड़ा, चांचरी, छपेली व जागर आदि के माध्यम से समाज को परिवर्तित करने पर बल देते हैं। वे हमेशा समाज में सामाजिक , सांस्कृतिक व राजनीतिक रूप से सक्रिय रहे हैं। गिर्दा को उत्तराखण्ड का जनवादी कवि माना जाता है। उनकी तुलना देश के प्रमुख जनवादी कवियों के साथ और वाम समर्थक लेखकों के साथ की जाती है।

बालम सिंह जनौटी का जन्म 4 दिसम्बर 1949 में हुआ। बालम सिंह जनौटी तीखे संघर्षों एवं आधुनिक भाव-बोध के साथ-साथ उसकी विसंगतियों के अनमोल कवि हैं। आधुनिक सत्ता और शासन के खिलाफ अपने स्वर बुलंद करने वाला कवि बालम सिंह जनौटी आधुनिकीकरण के तत्पश्चात् बाजार की चपेट में आने वाले गावों का कवि है। यह मुखतलिब स्वर पहाड़ की असंगति एवं उसकी विसंगतियों के साथ-साथ उसके सहजपन व सरल जीवन को बचाने की छटपटाहट का कवि है। इनकी प्रमुख कविताएँ कुमाउँनी भाषा लिजी, कुमाउॅनी लैंगवेज, भिसौण, तीन बीघा जमीन, नाकसाफ, आत्महत्या, संविधानक पीड़, तस निकरो, आदि हैं। बालम सिंह जनौटी तीखे विद्रोहों का कवि है। संविधानक पीड़ में लिखते हैं कि

''मैं भारतक संविधान छूँ।
उमरक ज्वान-जमान छूँ।
एक बखत नै
बार बखत,
चिरि, फाड़ि, सिणि
बख्यै- टँक्यै हालौ
म्यर आड
फोड़ि, खचोरि, ऑख कान।
टोड़ि- फतोड़ि टांड छूँ
मैं भारतक संविधान छूँ''

राजनीतिक रूप से सचेत कवियों में बालम सिंह जनौटी भी गिर्दा की तरह ही जनवादी परंपरा के कवि ठहरते हैं। जहॉ वह एक तरु सत्ता और शासन का विरोध तीखे व्यंग्यों से करते हैं , वहीं अपने जनमानस की कमियों को उजागर करने में भी पीछे नहीं हटते हैं। भाषाई साम्राज्यवाद की खड़ी कविता कुमाउँनी लैंग्वेज में वह लिखते हैं कि

''हम कुमाउँनी कैं आइडैंटीफाई करण में
सैक्सेसफुल हैंगी
कुमाउँनी कौनफ्रेंस वन बाई वन व्यूटीफुल हैंगीं''
उनकी कविता लोकतंत्र भी आम आदमी के खत्म होते लोकतांत्रिक अधिकारों की कविता है। वे लिखते हैं –'

नेता लोगन
लोकतंत्र कैं पटकि पटकि भैर मार दे
डॉक्टरोंल
पोस्टमाटमै रिपोर्ट में
आत्महत्या करार दें''
शेखर पाठक ने जिन रचनाकारों के नाम उद्धृत किए हैं, वे इस तरह से हैं – ''1969 के बाद कुमाउँनी के अनेक कवि रचनाकारों का उदय हुआ है। शैलेश मटियानी, मनोहर भयाम जोशी या शिवानी सहित हिंदी जगत के अनेक रचनाकारों ने कुमाउँनी भाषा को हिंदी साहित्य में भी प्रस्तुत किया तो कुमाउँनी में जगदीश जोशी, राजेन्द्र बोरा, रतन सिंह किरमोलिया, अनिल कार्की, मथुरादत्त मठपाल, रमेश चंद्र शाह , बालम सिंह जनोटी, देवकी मेहरा, महेन्द्र मटियानी, नवीन जोशी, शेर सिंह बिष्ट , मोहन कुमाउँनी, हेमन्त बिष्ट, नारायण सिंह बिष्ट, ज्ञान पंत जैसे कवि रचनाकार उभर कर आये।

वहीं डॉ0 देवसिंह पोखरिया के अनुसार साठोत्तरी कुमाउँनी रचनाकारों की लिस्ट इस तरह से है – '' स्व0 चन्द्रपालसिंह नेगी, सुरेश पांडे, नवीन चंद्र जोशी, प्रेम सिंह नेगी, खीमानंद पांडे, हरिशचंद्र जोशी , महेन्द्र मटियानी, जगदीश जोशी, नवीन बिष्ट, केदारसिंह कुंजवाल, बालम सिंह जनौटी, देव सिंह पोखरिया, रमेश चंद्र साह, कुमारिल पंत, हयात रावत, अनिल भोज, दीपक कार्की, कृपाल दत्त भट्ट , दामोदर जोशी, हेमंत बिष्ट, कुबेरसिंह, कड़ाकोटी, लक्ष्मणसिंह नेगी, रतनसिंह किरमोलिया, तारा पांडे, गंगा प्रसाद पांडे, शंकर दत्त पुजारी, बहादुर बोरा ' श्री बंधु', लेखराज सिंह कुर्म्याल, आनंद सिंह नेगी, सुधीर साह, काशीराम भट्ट, ईश्वरी सिंह बिष्ट, हीरा सिंह रमोला, श्रीमती लीला खोलिया, दिनेश चन्द्र तिवारी, सैमुअल माधो सिंह, विशनदत्त जोशी शैलज, व मोहम्मद अली अजनबी को कुमाउनी भाषा में उर्दू की गज़ल विधा के लिए जाना जाता है इनके अलावा टीका राम गयाल, मोहनराम टम्टा, देवकी नन्दन काण्डपाल, डॉ0 दिवा भट्ट , हरीश पाठक, सुरेश पंत, ज्ञान पन्त आदि का नाम उल्लेखनीय है।

अन्य कई उदीयमान रचनाकार – शिव राजसिंह भंडारी, चंद्रशेखर पाठक, शांता पांडे, जगदीश्वरी प्रसाद, सुरेन्द्र प्रसाद, भीम बगडवाल, रमेश पांडे 'राजन' सुशीला मठपाल, हेमंती मठपाल, कुसुम भट्ट, पूरन मठपाल, योगेन्द्र प्रसाद जोशी , गणेश तिवारी, सोनी पांडे, रीता जोशी, वीना पांडे, मधु महरा, राधा बाल्मीकि, शशिकला गोस्वामी आदि।

इसके अलावा कुमाउँनी साहित्य के प्रमुख स्वरों में जिन कवियों ने एक अलग पहचान बनाई है उनमें डॉ0 मनोज उप्रेती (बागेश्वर, 1 अक्टूबर 1974) तथा दिनेश भट्ट पिथौरागढ़ का नाम उल्लेखनीय है। डॉ0 मनोज उप्रेती द्वारा प्रकाशित कविता संग्रह क्याप-क्याप (2010) और अद्रैण स्वैण कुमाउँनी कविता की नई दिशा की दृष्टि से महत्वपूर्ण संग्रह है।

बोध प्रश्न

प्रश्न – क . गुमानी और तत्कालीन कुमाउनी ब्रिटिश समाज पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

नीचे दिए गए बहुविकल्पी प्रश्नों के उत्तर लिखिए

1. कुमाउनी भाषा की पहली महिला कवि है
   क़. देवकी मेहरा
   ख.दिवा भट्ट
   ग. लक्ष्मीटम्टा
   घ. शान्ता पांडे
2. 'मुलुकिया यारो कलयुग देखो।/ घर – कुडि बेचि बेर इस्तीफा लेखो ।। यह काव्य पंक्तियाँ किस कवि की है
   क . कृष्णानन्द पांडे
   ख. गौरीदत्त पांडे
   ग . गिर्दा
   घ . जगदीश जोशी
3. 'मुर्दाक बयान' कुमाउनी कविता के लेखक है
   क. शेर सिंह अनपढ़
   ख. बालम सिंह जनोटी
   ग. हयात सिंह रावत
   घ. राजेन्द्र सिंह बोरा
4. 'धरतीक पीड़' कविता संग्रह किस कवि द्वारा लिखित है
   क- गोपाल दत्त भट्ट
   ख- जगदीश जोशी
   ग- गिर्दा
   घ- शेरदा अनपढ़
5. कुमाउनी भाषा में उर्दू की गज़ल विधा के लिए किस रचनाकर को जाना जाता है

क . महेंद्र मटियानी

ख. मोहम्मद अली अजनबी

ग. हेमंती मठपाल

घ . गोपाल दत्त भट्ट

4.6 सारांश

कुमाउनी पद्य साहित्य की परम्परा अपने आप में समृद्ध। यह भी मानना होगा कि जहाँ उत्तराखण्ड का मौखिक काव्य यहीं के दलितों द्वारा गायन की मौखिक परंपराओं में संरक्षित किया गया। कालांतर में लिखित साहित्य में दलित कवि एंव दलित सरोकार भोगो हुए यथार्थ के सरोकारों से भिन्न सहानुभूति के सरोकार के साथ कुमाउँनी पद्य साहित्य में दृष्टिगोचर होते हैं। यह कहना उचित ही होगा कि जहॉ एक ओर उत्तराखंड के लोक की मौखिक परंपराओं में दलितों का इतना समृद्ध इतिहास रहा है, वहीं कुमाउनी लिखित काव्य एवं साहित्य में दलित लेखकों की संख्या बहुत कम हैं, जिनमें मोहन राम टम्टा, सुरेन्द्र प्रसाद, बची राम आर्या, नारायण राम आर्या, तारा राम आर्या, ख्याली राम शिल्पकार, भवानी राम कवियों का जिक्र भी मिलता है, परन्तु उनकी पद्य रचनाएँ कहीं नहीं मिलती हैं। महिला लेखन में भी पहली कवयित्री देवकी महरा का ही जिक्र मिलता है, जबकि कुमाउँनी समाज के मौखिक परंपराओं में न्योली जैसे आसू छंदों की रचयिता अधिकतर महिलाएं ही मानी जाती हैं। फिर भी जो न्यूनाधिक लेखन मिलता है, उनमें प्रमुख नाम हैं – श्रीमती लीला खोलिया, डॉ0 दिवा भट्ट , शांता पांडे, सुशीला मठपाल, हेमंती मठपाल, सुसुम भट्ट , सोनी पांडे, रीता जोशी, वीना पांडे, मधु महरा , राधा बाल्मिकी, शशिकला गोस्वामी आदि।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

लघु उत्तरीय प्रश्नों के उत्तर

देखें 4. 4

देखें 4.5

बहुविकल्पी प्रश्नों के उत्तर

क – क-देवकी मेहरा

ख- क - कृष्णानन्द पांडे

बहुविकल्पी प्रश्नों के उत्तर

क – ख – 4

ख – क – कृष्णानन्द पाण्डे

ग – क - शेर सिंह अनपढ़

घ - घ - गोपाल दत्त भट्ट

ङ- ख – मोहम्मद अली अजनबी

4.8 **संदर्भ ग्रंथ सूची**

1. पोखरिया, देव सिंह, 2012 : कुमाउँनी लोक गीतों में छंद योजना, अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी (नैनीताल), पृष्ठ संख्या – 1
2. भट्ट , उमा (चयन तथा सं0) 2010 : कहै गुमानी, प्रकाशन परिक्रमा तल्लाडांडा, तल्लीताल, नैनीताल – 263002द्व पृष्ठ संख्या – 1
3. पोखरिया, देव सिंह 2012 : कुमाउँनी लोकगीतों में छंद योजना, अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी (नैनीताल), पृष्ठ संख्या – 3
4. पोखरिया, देवसिंह : 1994 : कुमाउँनी लोक साहित्य एवं कुमाउँनी साहित्य, प्रकाशन श्री अल्मोड़ा बुक डीपो, पृष्ठ संख्या – 85
5. पोखरिया, देवसिंह: 1994 : कुमाउँनी लोक साहित्य एवं कुमाउँनी साहित्य, प्रकाशन श्री अल्मोड़ा बुक डीपो, पृष्ठ संख्या -99
6. भट्ट, उमा (चयन तथा सं0) : 2010 : कहै गुमानी, प्रकाशक परिक्रमा तल्लाडांडा, तल्लीताल, नैनीताल – 263002, पृष्ठ संख्या – 1
7. पोखरिया, देवसिंह :1994 : कुमाउँनी लोक साहित्य एवं कुमाउँनी साहित्य, प्रकाशन श्री अल्मोड़ा बुक डीपो, पृष्ठ संख्या – 86
8. भट्ट, उमा (चयन तथा सं0) : 2010 : कहै गुमानी, प्रकाशक परिक्रमा तल्लाडांडा, तल्लीताल, नैनीताल – 263002, पृष्ठ संख्या – 42
9. पोखरिया, देवसिंह : 1994 : कुमाउँनी लोक साहित्य एवं कुमाउँनी साहित्य, प्रकाशन श्री अल्मोड़ा बुक डीपो, पृष्ठ संख्या – 87-88
10. पोखरिया, देवसिंह : 1994 : कुमाउँनी लोक साहित्य एवं कुमाउँनी साहित्य, प्रकाशन श्री अल्मोड़ा बुक डीपो, पृष्ठ संख्या – 91
11. Ratibyan.blogspot.in/2013/06/blog-post_13stml
12. पाण्डे, चारू चन्द्र: 2002: छोड़ो गुलामी खिताब, पहाड़ परिक्रमा, तल्लाडांडा, तल्लीताल नैनीताल – 263002, पृष्ठ संख्या – 53
13. Ratibyan.blogspot.in/2013/06/blog-post_13stml
14. पाण्डे, चारू चन्द्र: 2002: छोड़ो गुलामी खिताब, पहाड़ परिक्रमा, तल्लाडांडा, तल्लीताल नैनीताल – 263002, पृष्ठ संख्या – 27
15. पोखरिया, देवसिंह : 1994 : कुमाउँनी लोक साहित्य एवं कुमाउँनी साहित्य, प्रकाशन श्री अल्मोड़ा बुक डीपो, पृष्ठ संख्या – 104
16. पोखरिया, देवसिंह : 1994 : कुमाउँनी लोक साहित्य एवं कुमाउँनी साहित्य, प्रकाशन श्री अल्मोड़ा बुक डीपो, पृष्ठ संख्या – 104

17. पोखरिया, देवसिंह : 1994 : कुमाउँनी लोक साहित्य एवं कुमाउँनी साहित्य, प्रकाशन श्री अल्मोड़ा बुक डीपो, पृष्ठ संख्या – 115

4.9 उपयोगी पाठ्य पुस्तकें

1. कुमाउनी लोक साहित्य एवं कुमाउनी साहित्य, देवसिंह पोखरिया, प्रकाशन श्री अल्मोड़ा बुक डीपो, अल्मोड़ा
2. शिखरों के स्वर, संपादन गिरीश तिवारी गिर्दा , दुर्गेश पंत, पहाड़ परिक्रमा, तल्लाडांडा, तल्लीताल नैनीताल – 263002
3. छोड़ो गुलामी खिताब, चारुचंद पांडे , पहाड़ परिक्रमा, तल्लाडांडा, तल्लीताल नैनीताल – 263002
4. कहै गुमानी, उमा भट्ट, प्रकाशक परिक्रमा तल्लाडांडा, तल्लीताल, नैनीताल – 263002
5. कुमाउनी भाषा और उसका साहित्य , डॉ० त्रिलोचन पाण्डे श्री अल्मोड़ा बुक डीपो, अल्मोड़ा
6. कुमाउनी भाषा और साहित्य का उद्भव विकास , प्रो० शेर सिंह बिष्ट, अंकित प्रकाशन , हलद्वानी
7. कुमाउनी लोक संस्कृति के विविध आयाम , अनिल कार्की, समय साक्ष्य प्रकाशन, देहरादून
8. उत्तराखण्ड का लोक साहित्य और जन- जीवन , डॉ सरला चंदोला , तक्षशीला प्रकाशन अंसारी रोड, दरिया गंज नई दिल्ली
9. कुमाउनी का लोक साहित्य, डॉ त्रिलोचन पांडे

4.10 निबंधात्मक प्रश्न

क . कुमाऊँनी के लिखित पद्य साहित्य पर निबन्ध लिखिए

ख. कुमाऊँनी के लिखित पद्य साहित्य के विभिन्न काल खंडों और उनके प्रमुख कवियों पर निबन्ध लिखिए

इकाई 5 – कुमाउनी साहित्य की भाषिक सम्पदाएँ

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5 .2 उद्देश्य
5.3 मुहावरे
5.4 कहावतें
5.5 पहेलियां
5 .6 सारांश
5.7 शब्दावली
5.8 . सन्दर्भ ग्रन्थ
5.9 सहायक पाठ्य सामग्री
5.10 . निबंधात्मक प्रश्न

क

5.1 प्रस्तावना

भाषा अर्जित सम्पत्ति है, न कि पैतृक। भाषा की उत्पत्ति समाज से होती है, उसका विकास समाज में होता है, उसका अर्जन समाज से होता है और उसका प्रयोग भी समाज में ही होता है। भाषा एक सामाजिक संपत्ति है। भाषा का प्रयोग मनुष्य परस्पर विचार विनिमय के लिए करता है, और यही भाषा उसके इतिहास और संस्कृति को समृद्ध बनाती है। इस इकाई में हम कुमाउनी भाषा की भाषिक सम्पदा मुहावरे, कहावतें एवं सांस्कृतिक शब्दावली पर विद्यार्थियों को महत्वपूर्ण जानकारी देंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ कर आप समझ सकेंगे—

- विद्यार्थी कुमाउनी भाषिक संपदा से परिचित हो सकेंगे
- कहावतों मुहावरों , पहेलियों की भाषा में प्रयोग की महत्ता को समझ सकेंगे

5.3 मुहावरे

बोल चाल की भाषा में मुहावरों का भी विषिष्ट स्थान होता है। इनका प्रयोग प्रत्येक भाषाओं में होता है कुमाऊनी भाषा में भी मुहावरों का प्रयोग होता है। मुहावरे किसी भी बातपोष की कहन को चुटीला और रोचक बनाते हैं। लोकभाषाओं में मुहावरे भाषा की वैष्ट्यि की रीढ़ हैं। साथ ही ये मुहावरे लेखिन परंम्परा में भी लेखन को कसावट व प्रामाणिक बनाते हैं। मुहावरे किसी भी समाज के सामाजिक सांस्कृतिक और राजनैतिक लोकाचारों को जानने समझने का औजार है। इनके माध्यम से इस बात का पता का अन्दाजा लगाया जा सकता है कि कोई समाज कितना रूढ़ी और अत्याधुनिक या चेतन समाज है सा उसमें स्त्री, जाति पुरूष, धर्म को लेकर किस तरह की अवधारणाएं हैं ये आपको उस समाज व स्थानीय भाषा के मुहावरे दे सकते हैं। यहां प्रस्तुत है कुछ ऐसे ही मुहावरे।

1. हात मलन (पश्चताप)
2. चुड़ा पैरन (कायरता)
3. कान भरन (चुगली करना)
4. नाक राखन (इज्जत करना)
5. आंखा लागन (नींद लगना)
6. ख्वारा में चडूंन (अधिक लाड़ प्यार)
7. गांठा पाड़न (याद रखना)
8. पठि देखूंन (भाग जाना)
9. खाप में जानि भरीन (ललचाना)
10. खुटा पकड़न (खुसामद करना)
11. म्नहार हुंन (हिम्मत हारना)

12. आंखा बटे गिरन (अपमानित)
13. आंखा धेकून (धमकाना)
14. खाक छानन (मारा मार फिरना)
15. पौ वाराक तेल (लाभ होना)
16. पेट में मुसा दौड़ना (अत्यधिक भूख)
17. दैन हाथ (सच्चा सहायक)
18. टाङ छिरन (हार मानना)
19. झक मारन (मजबूर होना)
20. उमर ढलन (जीवन के थाड़े दिन शेष रहना)
21. आंसु पोछन (हिम्मत बधाना)
22. रीस को पुलो (अत्यधिक गुस्से वाला)
23. ऐना में मूंख चान (अपनी शकल देखना)
24. आवाज उठूंन (आन्दोलन करना)
25. आफत को मार्यो (मुसीबत में पड़ा हुआ)
26. अगासै चड़न (झूठी बड़ाई)
27. इमान ले कून (सत्य कहना)
28. उल्टी गंङ वगून (अनहोनी बात करना)
29. कलंक लगून (बदनाम करना)
30. कल्जो जलून (दुःख देना)
31. कान पकड़न (तौबा करना)
32. कालो मूंख करन (बेइजती होना)
33. किड़ा पड़न (बुरा परिणाम निकलना)
34. दिल खटकन (मन खराब होना)
35. खालिहात (बिना उपहार होना)
36. खून चुसन (दुःख देना)
37. ख्याल मैं राखन (स्मृति में रखना)
38. खेल खराब हुन (काम बिगड़ना)
39. खाड़ खंजन (क्षति पहुँचाना)
40. फसक उड़ूंन (अफवाह फैलाना)
41. गैली बात (भेद की बात)
42. गांठ कोतरन (जेब काटना)
43. घर को आदिम (अतिनिकट का)

44. घरै की बात (आपस की बात)
45. घर में आग लगून (घर में झगड़ा कराना)
46. घर बटे खुटो गाड़ना (बाहर जाना)
47. चिफलि बात करन (मीठी बात करना)
48. चैन की मुरलि बजून (सुख के दिन बिताना)
49. मुख को रंग उड़न (उदासी छाना)
50. जंजाल में पड़न (चक्कर में पड़ना)
51. जमानो देखन (अनुभव होना)
52. जलि भरन (कुड़ना)
53. ज्यान खान (परेशान करना)
54. हियो भरी ऊँन (करूणा से द्रवित होना)
55. मन लगूंन (जुटना)
56. झाड़ घालि झकड़ो करन (बिना मतलब का झंझट)
57. झाड़ ताड़ करन (मंत्र से भूत भगाना)
58. टिप्पस लगूंन (स्वार्थ निकालना)
59. दुसरा कि खोटि करन (आलोचना करना)
60. ढाक का तिन्ने पात (सदा गरीब रहना)
61. ढङ कि बतकौ (ठीक बात)
62. तरुदरि को खोटो (भाग्यहीन)
63. ताक में रून (मौके की खोज में रहना)
64. लिया चलित्र (स्त्रियों का रहस्य)
65. थू -थू करन (बेइज्जत होना)
66. देलिको कुकुर (पिछलगू)
67. दमवादन (हिम्मत करना)
68. मन काटीन (उत्साह हीन)
69. दूद पिन्या नानतिन (छोटा बच्चा)
70. पुछड़ हलकूंन (खुशी दर्शाना)
71. द्वी कौड़ि को पाजि (नीच)
72. धतुरो खै घुमन (मस्त होकर घूमना)
73. धैर्ज वादन (हिम्मत बांधना)
74. धूम धड़ाक (भीड़ भाड़)
75. धूल समजन (तुच्छ समझना)

76. नजर में खटकना (अप्रिय लगना)
77. दिनकि चैन रात कि नीन हराम हुन (हर समय फिक्र लगना)
78. नाक रगड़न (मिन्नतें करना)
79. पट्टी पड़ून (बहकाना)
80. खुटो अलज्यून (विवाह सम्बन्ध में बधना)
81. पत्तालै कि खबर ल्यूंन (दूर-दूर से समाचार लाना)
82. पानि का भौ (बहुत सस्ता)
83. पानि में आग लगून (असम्भव को सम्भव करना)
84. पिण्ड छुड़ून (छुटकारा पाना)
85. पेट में आग लागन (बहुत तेज भूख लगना)
86. बड़ो भागी हुन (भाग्यशाली होना)
87. नानतिनान को खेल (बच्चों का खेल)
88. वलि का बाकारा (दूसरों के लिए मरा जाना)
89. बात उठून (चर्चा छेड़ना)
90. बात बिगाड़ना (काम बिगाड़ना)
91. बिरादरी हैं अलग हुंन(जाति से अलग होना)
92. एकैं हात को खेल (सरल काम)
93. बात सुणूंन (भला बुरा कहना)
94. बात जोड़न (झूठी बात कहना)
95. बात हाकन (कोरी गप्प)
96. भर ज्वानी (पूर्ण यौवनावस्था)
97. भदौ मैना को राडो (ज्यादा मोटा)
98. भोग लगूंन (देवताओं को चड़ाना)
99. मन फाटन (तवियत हटना)
100. मूंख समालन (बुरा न बोलना)

बोध प्रश्न

प्रश्न - नाक राखन

क. नाक आना

ख. नाक को कहीं रख देना

ग. नाम को मिटा देना

घ. इज्जत रख देना

उत्तर – घ

प्रश्न - पत्तालै कि खबर ल्यूंन

क. पत्ते की खबर लाना

ख. खबर लेना

ग. खबर लिखना

घ. दूर की खबर लाना

उत्तर – घ

5.4 कहावतें

लोकोक्ति, कहावतें संसार की सभी भाषाओं में प्रचलित है इनके व्यवहार से भाषा का सौन्दर्य भी बढ़ जाता है, केवल लिखने में ही नहीं बोलने में भी इनका प्रयोग भाषा के आकर्षण को बड़ा देते हैं। कुमाऊनी भाषा में भी इनका प्रयोग बात-बात पर किए जाते है। कहावतों के पीछे बातपोष बहुत कहानियां जोड़ते हैं। हर कहावत के पीछे कोई न कोई कहानी होती है। कई बातपोष तो अपनी बातपोषी को कहावतों मे सजाकर करते है। पहाड़ों में किस्सागाई का अपना महत्व है हमारे समाज में किस्सागो को फसकिया या फसकबाज कहते हैं। गढ़वाल की तरफ छुयांल । समाज को समझने में इन्हे भी महत्वपूर्ण औजार है। किसी भी लोकभाषा की संपन्नता का अन्दाजा लगाना हो तो उस भाषा की कहावतों से अन्दाजा लगा सकते हैं। कहवातें लोकभाषा भाषी क्षेत्र के सामाजिक संरचनाओं को समझने का महत्वपूर्ण औजार है। जिस भाषा में कहवाते हैं उसके लिखित साहित्य में इसका व्यापक असर पड़ता है क्योंकि इससे लिखित साहित्य में भी कहावतें उर्वरक का काम करती है। समाज अध्ययनों में भी कहावतों का महत्वपूर्ण योगदान है।

1. अदपुरि विद्या जीवे काल।
2. अद्यैन वामुनकि भैंसान खीर।
3. अक्ल को पुरी।
4. आग लगै पानि हुं दौड़न।
5. अफन मैंत को कुकुर लै लाड़ो।
6. अफनो सुनु खोटो परखनेर बांच।
7. आफी नैग आफी पैग।
8. जैकि गांठि तैकी जांठि।
9. एक कौधा को नौ कव्वा बनून।
10. एक गंगोलो सौ रंगलो।

11. अखट जोगी फटकौ छाला, जथकै जाला उथकै खाला,
12. एक दिन कौ पौन, द्वि दिन को पौन, तिसरा दिन निमट्न।
13. एकै खाड़ा का पिणांलू।
14. कच्यार् में ढूंग हाण्यो, अफनै आङ।
15. कालू बिष्टा का धान।
16. कुकुर मुंख लगायो, थाल चाटंछो।
17. काण विरालू माण लै पत्यून।
18. लाटिका ब्या में हजार खुचाङ।
19. कां जै राजाकि शनि कां भुगबाकि कानि।
20. देखीं आदिम कि देखन, तापीं घाम कि तापन।
21. खायो आदिम कि जाणूं भुखाकि बात।
22. पनि हैं पतलो नौनि हैं नरम।
23. नखनियां ब्वारिका नौ पतैड़।
24. जैकि बड़ि -बड़ि आस, उइले दे कौन् को गास।
25. हाथ जैं चटायो कून लपक।
26. कुच्चाले झाड़नाको बयाल उड़ै ल्हिग्यो।
27. बीसकि उन्नीस हुंन।
28. थुकिनाको थूक चाटन।
29. ग्रीबकि स्याणि, सबकी बौजि।
30. च्याला कि देखन, च्याला का यार देखन।
31. ज्यौड़ो जलि जांछ, पैण नै जलनि।
32. हात पड़िनाकि कुशल।
33. या दौनी छाजौ, या ठेकी बाजौ।
34. खान खै बेर जात पुछन।
35. कुकुर का पुछड़ लै थेलुवा बादयो फिर लै टेड़ा को टेड़ो।
36. काचै गू आग हालन।
37. खैबड़िनाक ।
38. चूख चाटन्या भाजी पड़्यो, पात चाटन्या हात पड़्यो
39. विधांता कि लेख।
40. गोरख्यौल है रे।
41. स्याप को पोथो, स्यापै जसो।
42. अफना मनकि करन।

43. रावण को जसो घमण्ड।
44. अत्ती उमलिनाथो घौल जांछ।
45. कुकुरका घरा लै बासि रोटा।
46. नपून्याले पायो चबै-चबै खायो।
47. कौवा धत्यायो चील फड़ फड़ायो।
48. गुनो अफनो पुछड़ नानूं देखंछ।
49. जेठज्यू मरिग्या, कुकरम करिग्या।
50. गौं का लछिन ग्वैठा बटे।
51. बाग में ढूंट पड़्यो।
52. गरीब का दीन ग्या सौकारा का दीन आया।
53. चैन का चुपड़ा गुलप्या का ड्योड़ा।
54. तात्वे खूं जलि मरूं।
55. ले बाग मेरि खुट्टी।
56. छपड़ा को जसो रङ बदलन।
57. जैकि खाप चलि वीकि नौ हल बल्द चलि।
58. जो काका कि खूंल सोचूं उ बाबा कि लै नै खै सकनो।
59. लगनकि बखतको हगन।
61. ढूंङ खोजना को दपायता मिलि पड़्यो।
62. तल्ला पेट को पानि जन हलकै।
63. पेट पैठि बेर खुटा तानन।
64. नाई दगड़ा सल्लाग में दाड़ि भिजै बैठन।
65. न पट्योक गोपिया बामण।
66. नौल गोरु का नौ पुला घास।
67. बाटै ल्वार बाटै आफर।
68. खै बेर जाड़ो नै बेर न्या।
69. नै पुजे अलम्बाड़ा, नै लाग्या गजमोड़ा।
70. सानन थैं पधान हो कयो रातै में टेड़ी टेड़ी आयो।
71. आसमानका फल।
72. अभागि मंगलुवा कौतिक ग्यो कौतिकै नि भ्यो।
73. हात पड़िनाको छाड़ि दियो हात सान करि बोलयो।
74. एक दुसरा को थोल चाटन।
75. हांजिरकि सोद नै गैर हांजरकि तलास।

76. दालभात छोड़ि दिनान दगड़ो नै छोड़ना।
77. सब हैं हल्को पराल वी है हल्को सोराल।
78. कानो घालि डूनो पाजि।
79. मुसाकि चेलि मुसाका गै।
80. जो जसो करुंछ दुसरा कैं लै उसै समजंछ।
81. जसो बोयो उसो काट्यो।
82. नाक बाल काटि बेर भेजन्।
83. जैक बिसा नै वै कि ठुलि नालि।
84. बिना भेद जाण्यां स्यापका ढुला हात हात हालन।
85. डज्या घरको कुच्चै सही।
86. छुसराक ख्वार लै खोरो घोसिबेट जैं कि चोपड़ो हुंछ।
87. कुलो टुक्यो गाड़, चेलि रिसै मैत्।
88. स्यानी पुर्ख्यालि बाकर वटारो।
89. नचनि खेलनि मुखै थें ऊंछी।
90. कलूं खोजन लगाप क्वासा खान्वे घर आयो।
91. भैंसाका सींङ भैसा लै मारि जैं कि हुनान।
92. घर पिणांलू, बन पिणांलू मांमा का वां गयो द्वी हात लम्भा पिणांलू।
93. गैन बाच्छी नींनै अच्छी, ज्वान चेलो सांसै सेलो।
94. खान दिन सासु का न खान दिन ब्वारिका।
95. तित्त बेलाका तित्ता फल जस्सी मतारि उस्सी चेलि।
96. पातल का चड़ा कि वासनान कि नै वासना।
97. कुकुर का घरो लै कपास।
98. चैन बखत का घ्वाड़ा खोजन।
99. काटिया में नून हालन।
100. आंखान में धूल झौंकन।

बोध प्रश्न

प्रश्न – क जैकि खाप चलि वीकि नौ हल बल्द चलि।

क. जिसकी जुबान चलती है उसके बैल चलते है

ख. जिसकी जुबान चलती है उसका राजकाज चलता है

ग. जिसकी जुबान चलती है उसका घर चलता है

घ. जिसकी जुबान चलती है वह सम्पन्न होता है

उत्तर – घ

प्रश्न – ख न पट्योक गोपिया बामण।

क . न मिला तो गोपिय बामण

ख. जब कोई विद्वान न मिला तब कामचलाऊ ही बेहतर

ग . गोपिया बामन सब ठीक कर देगा

घ . गोपिया ही बामन है

उत्तर - ख. जब कोई नहीं मिला तब गोपिया बामन

5.5 पहेली (ऐंणां)

पुराने समाजों में कथागोई और पहेली कहने की परम्परा थी। इसी से संबन्धित पेहेलियों को सुनने को लेकर आम कहावत यहां कुमाउ के सामाजों में प्रचलन में हैं कि दिन में ऐण सुनने से आंख फूट जाती है। यह नियमन सुनने में बहुत ही हल्का और अतार्कीक लग सकता है। पर इसके इस नियमन के पीछे ऐंणा की उस सवाली /षास्त्रीय ताकत का भान होता है जिससे इस तरह का नियमन हुआ हो।

क्योंकि एंणा में पूछे जाने वाले सवाल को खोजना बड़ी टेढ़ी खीर हुआ करती है। इसीलिए इसको रात को ही सुनाने का जिक्र मिलता है तांकि ऐंणा डालने वाले इत्मीनान से काम से फुर्सत पाकर सवालों को सोचकर जवाब दें। दिन में ऐंणा सुनने से आंख फूटने वाली कहावत शायद इसी वजह से प्रचलित हुई कि किसी कामगार फिर दिनचर्या के काम छोड़ कर इसी के पीछे लग जाते हों। बहुत हद तक पुराने समाजों में इस तरह ही नियमन होते रहे हैं। जाड़े की लम्बी रातों में कुमाऊ में आग के पास बैठकर पहेली बूझना कहानियाँ, बातें, यात्रा सस्मरण सुनाने का वृद्धों को बड़ी रुचि होती थी। पहेलियों (ऐणां) का उत्तर जटिल भी होते हैं ये पहेलियाँ पषु, पक्षी, वस्तु, वस्त्र आदि कई चीजों के बारे में पूछे जाते है। कुछ कुमाऊँनी में पहेलियाँ निम्नवत हैं।

1. नानी वामुनि का ठुला कान, जै भान मरिग्यो बुड़ामान ज्वान। (केला)
2. तीन भाईनं कि एक्कै पगड़ि। (जांती)
3. सफेद गोरु का मुख में हरियो सौलो।(मूली)
4. बिना आगा पानि का दम दम्या रोट। (शहद)
5. बन जान बखत घर मूंख, घर ऊंन बखतं बन मूंख।(कुल्हाड़ी)
6. लम्बा बेला का मिठा फल। (मछली)
7. धार में जोगि झाकरा फिजालि बैठि रुंछ। (बाब्यो, बाविला)
8. सिराकोट को राजा नङरकोट में मारी ग्यो।(जुंआं)

9. नानी वामुनि का हात भरी चूड़ा।(झाड़ू)
10. चार भाईन कि एक्कै पगड़ि।(चारपाई)
11. खाना कि खांछ पचन्वे नै, जै कि डाड़ हालि बचन्वे नै।(बन्दूक)
12. झलमल्या बल्द जोति नै सकीन, स्यौंलि को सियको होड़ि नै सकीन, थालि भरि रुप्या गाणि नै सकीन।(शेर, सांप, तारे)
13. च्यां कर क्यां कर मैं बिना क्या कर। (नमक)
14. सङयूं-पड्यों घ्वाड़ा में चड्यो।(गोबर की खाद)
15. हरै गै हरकत है गै, पाइ गै ख्वारा पड़ि गै। (टोपी)
16. धर्ति तलिपनि रकत कि खाल।(हल्दी)
17. रातै रातै मतारि चेलि कैं ढोग दिंछि। (गगरी -लोटा)
18. पुछड़ पानि में, मुंख में आगो (बत्ती)
19. हात्ति का पेट गजमजाट (घर)
20. रातकि रतन थलि दिनकि भकौलि। (बिस्तर)
21. हरयि चड़ि दो पुछड़ि। (पूड़ा)
22. गोठ गै पाणां गै, भुर्र पठै। (रोटी)
23. जामिग्यो क्नी भुतो नै फोड़नो।(दही)
24. धुरीनि को मौर्या खोको। (गांण, घेंघा)
25. ब्यै ग्यो ब्या म्यो कुनीं थोरि काटो के नै हुनो। (रात ब्यान)
26. काला गोरु का पेट सफेद बाच्छी। (रीठे की गुठली)
27. धर्ति तालि पानि का गङ लोड़ा। (आलू)
28. धर्ति तालि पनि मुटक्या बौड़।(चूहा, भुसो)
29. चार बाग एकै ग्वैर ध्वीरनान। (थन)
30. बीस भाईन का पिठि पाथर।(नाखून)
31. मेंरि इजा ले बाग धेक्यो तेरि इजा कुनथुरी (बिल्ली)
32. ननी बामुनि का पेट भरि लोन।(मिर्च)
33. गाड़ गुड़ -गुड़ लेखा ध्वां। (हुक्का चिलम)
34. धार में साल्लो दोर्वे ढल्लो। (तेल पेलने का कोल्हू)
35. दर्गिया को घोड़ो दोर्वे मुत्तो।(छत, पाखो)
36. परै घांघर जलिजांछ नड़ो नै जलन।(रास्ता)
37. गाड़ै गाड़ निङाला को बाड़। (हौला, कोहरा)
38. हिटनै ग्याड़ा भुटनै।(बकरी)
39. हिटनै खोज मेटन्वे। (सुर्र)

40. काठकि बिण्डि सुनकि उझिण्डि। (चूख)
41. बन जान बखत फुसरो घर ऊंन बखत चिल्लो।(गगरी)
42. सेतो गड़ो कालो वी हातले बोयो खायले टिप्यो। (किताब, लिखना, पढ़ना)
43. ईजा कून्या एक बाबा कून्या द्वी।(थोल, होंठ)
44. आलङ गड़ा दोष, पालङ गड़ा ओस,
    तेरि ईजा ऊंन तक मैं नहांथिन होस। (घाम, धूप)
45. काठ कि कठखुलि चमकनि सुवा,
    फलों की झक मक बास नै आई। (डोली)
46. अन्यारा क्वाड़ा तितरि जुङ मलासि ।(बिल्ली)
47. सिमली का द्वार, बाबा ज्यू का दौना आया उघाड़ दौज्यू द्वार। (दूध रखने का बक्स)
48. सवै कौतिक ग्या नकटो घरै रुंछ। (चूल्हा)
49. सफेद गोरु हरी पूंछ, लाग -लाग भाई उच्चै लूछ।(मूली)
50. खांछ मुठी को पचन्वे नै, जै कि घात लगूंछ।(कुल्हाड़ी)
51. पूर्व कि रानि मुख बटे ब्यानी। (केला)
52. धार में वे कलुवा-कलुवा कै धात लगूंछ। (कुल्हाड़ी)
53. खुटा काटि भिङ धरि जांछ, अफ रुख जांछ। (जूता)
54. छोट्वे ज्वान वांकि कमान मारौ कमान गिरि जौ ज्वान।(बिच्छू)
55. सूर्ज ले आंखा तान्यो, बानर को खोरो फुट्यो। (कपास)
56. धार में खिरखा जा फोगी र्यान।(चींटी)
57. खुड़वुङ ख्याट्, पुछड़ तेरो न्याट् बोले बांसा कां रैथे चिण्डा खे व्याट् । (ताला)
58. खानाकि खानान ब्यू नै धरना। (नमक)
59. मेरा बाबा ले रुपै गण्यो, तेरो बाबा को पुछड़ चिमड़ियो। (बटुवा)
60. काल बल्दैं सफेद बल्दै पानि पिन ग्या काल बल्द बांई र्यो सफेद बल्द घर आयो। (मांस, उड़द)
61. जागसेरा कि बुड़ी वागसेट पोलि, पोलि-पालि मंुख जै वोलि। (बैल की घंटी)
62. काठकि कठघोड़ि लुवाकि लगाम बै में बैठ्यो कलुवा पधान। (हुक्का चिलम)
63. लाल गोरु पानि पी वेर ऊंन लागिरौ, सफेद गोरु पानि पिनहीं लागिरौ। (पूरी, लगड़)
64. कालो छ किरविरालो छ, सिङ नहा थिन पुछड़ छ। (बिल्ली)
65. काठा में सुकिली बर्यात ऐरे। (दांत)
66. रात्ते तेरि ईजा गुनां को मूंख धूंछि। (चूल्हा)
67. काटे, मांणे हाथ जन लगाये। (पालक)
68. रुखली -रुखलि,रुख झाना कि दुखलि। (सिसणों)
69. अफ रुख जांछ अनाड़ा -पितड़ा भिङ खिति जांछ।(तरुड़)

70. बाबा का नवान कि चेलो पानि छोड़ों। (पिनालू)

बोध प्रश्न

प्रश्न क . नानी वामुनि का ठुला कान, जै भान मरिग्यो बुड़ामान ज्वान।

क. केला

ख. अमरुद

ग. नारियल

घ. इमली

उत्तर – क

प्रश्न ख - सफेद गोरु का मुख में हरियो सौलो।

क . गाजर

ख. मूली

ग. शलजम

घ. अंडा

उत्तर – ख

5 .6 सारांश

इस इकाई को पढने के बाद आप—

- कुमाउनी भाषिक संपदा से परिचित हो चुके होंगे
- कहावतों मुहावरों , पहेलियों की भाषा में प्रयोग की महत्ता को समझ चुके होंगे

5.7 शब्दावली

खाप – मुँह

रीस – गुस्सा

कल्जो- कलेजा

डज्या- जले हुए

गोरू – गाय

5.8 . सन्दर्भ ग्रन्थ

कुमाउनी लोक संस्कृति विविध आयाम 'समय साक्ष्य प्रकाशन' देहरादून

5.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1 कुमाउनी लोक साहित्य एवं कुमाउनी साहित्य, देवसिंह पोखरिया, प्रकाशन श्री अल्मोड़ा बुक डीपो, अल्मोड़ा

2 शिखरों के स्वर, संपादन गिरीश तिवारी गिर्दा , दुर्गेश पंत, पहाड़ परिक्रमा, तल्लाडांडा, तल्लीताल नैनीताल

3 छोड़ो गुलामी खिताब, चारुचंद पांडे , पहाड़ परिक्रमा, तल्लाडांडा, तल्लीताल नैनीताल – 263002

4 कहै गुमानी, उमा भट्ट, प्रकाशक परिक्रमा तल्लाडांडा, तल्लीताल, नैनीताल – 263002

5 कुमाउनी भाषा और उसका साहित्य , डॉ० त्रिलोचन पाण्डे श्री अल्मोड़ा बुक डीपो, अल्मोड़ा

6 कुमाउनी भाषा और साहित्य का उद्भव विकास , प्रो० शेर सिंह बिष्ट, अंकित प्रकाशन , हलद्वानी

7 कुमाउनी लोक संस्कृति के विविध आयाम , अनिल कार्की, समय साक्ष्य प्रकाशन, देहरादून

8 उत्तराखण्ड का लोक साहित्य और जन- जीवन , डॉ सरला चंदोला , तक्षशीला प्रकाशन अंसारी रोड, दरिया गंज नई दिल्ली

9 कुमाउनी का लोक साहित्य, डॉ त्रिलोचन पांडे

5.10 . निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. कुमाउनी साहित्य की भाषिक सम्पदाओं के विषय में विस्तार से निबन्ध लिखिए

प्रश्न 2. कुमाउनी मुहावरों का आलोचनात्मक विवेचन कीजिए

इकाई 6 – कुमाउनी लोक साहित्य का इतिहास

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 कुमाउनी लोकसाहित्य: तात्पर्य एवं परिभाषा
    6.3.1 लोक साहित्य से तात्पर्य
    6.3.2 लोकसाहित्य एवं लोकवार्ता
    6.3.3 लोकसाहित्य एवं परिनिष्ठित साहित्य
6.4 कुमाउनी लोकसाहित्य का इतिहास
    6.4.1 कुमाउनी लोकसाहित्य तथा कुमाउनी साहित्य
    6.4.2 कुमाउनी लोकसाहित्य का वर्गीकरण
6.5. सारांश
6.6 पारिभाषिक शब्दावली
6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
6.9 सहायक पाठ्य सामग्री
6.10 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

कुमाउनी लोकसाहित्य को समझने के लिए यह जरूरी है कि कुमाऊँ में प्रचलित मौखिक परंपरा किस प्रकार परिनिष्ठित साहित्य में परिवर्तित हुई। कुमाऊँ क्षेत्र में आरंभ से चली आ रही मैखिक परंपरा को जानने समझने के लिए कुमाउनी भाषा का ज्ञान जरूरी है। कुमाऊँ में आरंभिक काल से चली आ रही मौखिक परंपरा ने ही कुमाउनी लिखित साहित्य को जन्म दिया है। इकाई के पूर्वार्द्ध में आप कुमाउनी लोकसाहित्य और परिनिष्ठित साहित्य को जान सकेगे।

इकाई के उत्तरार्द्ध में कुमाउनी लोकसाहित्य के इतिहास पर दृष्टि डाली गई है,साथ ही कुमाउनी लोकसाहित्य के वर्गीकरण को भी आप इस इकाई के अन्तर्गत आसानी से समझ सकेगे।

6.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप -

- कुमाउनी लोकसाहित्य के महत्त्व को बता सकेंगे।
- यह समझा सकेंगे कि कुमाउनी लोकसाहित्य तथा कुमाउनी साहित्य में क्या अन्तर है ?
- कुमाउनी लोकसाहित्य की विविध विधाओं का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- मौखिक परंपरा की मौलिकता को बता सकेंगे।
- यह बता सकेंगे कि कुमाउनी साहित्य को आगे बढ़ाने में लोकसाहित्य ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

6.3 कुमाउनी लोकसाहित्य: तात्पर्य एवं परिभाषा

लोकजीवन की विविध क्रियाएं व अनुभूति जब अभिव्यक्ति के धरातल पर आती है तब वहलोकसाहित्य कहलाता है। 'लोक' की अनुभूति की अभिव्यक्ति का दूसरा नाम है लोकसाहित्य।कुमाऊं क्षेत्र भौगोलिक रूप से पर्वतीय क्षेत्र कहलाता है।यहाँ की प्राचीन परंपराएँ, गीत ,संगीतऔर संस्कृति के मिश्रण से यहाँ के लोकसाहित्य का निर्माण हुआ है। लोकजीवन की भावभूमिपर उगे हुए साहित्य को लोकसाहित्य की संज्ञा दी जाती हैं।आज लोकसाहित्य के प्रति सहदय पाठकों एवं विद्वानों का रुझानअधिक दिखाई पड़ता है।इसका मूल कारण यह हैं कि लोकसाहित्य एक विशाल जनसमुदाय का साहित्य है। लोकसाहित्य में परंपरागत लोकजीवन की धारणाओं, विश्वासों तथा मान्यताओं का पुट होता है। कुमाऊँ क्षेत्र की वाचिक अथवा मौखिक परंपरा का एक दीर्घकालीन इतिहास रहा है। परंपरा सें चली आ रही मौखिक अभिव्यक्ति को कुमाउनी लोकसाहित्य कहा जाता है।

6.3.1 लोकसाहित्य से तात्पर्य

लोकसाहित्य शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के "लोकृ" (दर्शन) से हुई है "लोक" तथा "साहित्य" शब्द मिलकर लोकसाहित्य शब्द का निर्माण करते हैं। अमरकोश में लोकसाहित्य के लोक नामक अग्रशब्द के विभिन्न पर्यायवाची शब्द मिलते हैं यथा - भुवन,जगती,जगत्।लोकसाहित्य पूरे जनसमुदाय की अभिव्यक्ति का दर्पण होता है। लोकसाहित्य

इतिहास की दीर्घकालीन परंपराओं को समाविष्ट करता है। लोक में घटित हुई या घटित होने वाली घटनाओं के बारे में संवेदना मूलक धारणा विकसित करता है।लोक साहित्य के ममर्ज्ञ डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने लोकसाहित्य के संबंध में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है-"लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है,उसमें भूत भविष्य,वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है।लोक कृत्स्न ज्ञान और संपूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन मानव के लिए लोक सर्वोच्च प्रजापति है। लोक,लोक की धात्री सर्वभूता माता पृथिवी मानव इसी त्रिलोकी में जीवन का कल्याणतम रूप है।''डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार, "यह एक अर्धसरल स्वाभाविक मानव समाज है,जिसकी भावनाओं,विचारों,परंपराओं एवं मान्यताओं में वास्तविक कल्याण के तत्व विद्यमान रहते हैं।''

प्रोफेसर देव सिहं पोखरिया ने लोकसाहित्य के संबंध में अपना अभिमत व्यक्त करते हुए लिखा है,"लोक'' मानव समाज की वह सामूहिक इकाई है,जो अपने नैसर्गिक और स्वभाविक रूप में अभिजात्य बंधनों तथा परंपराओं से रहित पांडित्य, चमत्कार तथा शास्त्रीयता से दूर स्वतंत्र एवं पृथक जीवन का प्रचेता है और इसी का साहित्य लोकसाहित्य है।

आंग्ल भाषा में लोक को Folk(फोक) तथा साहित्य को Literature कहा जाता है।लोकसाहित्य पूर्णतः लोकमानस की उपज है।लोकसाहित्य को लिपिबद्ध अभिव्यक्ति ही नहीं माना जाता, बल्कि यह वास्तविक रूप में वाचिक अथवा भाषागत अभिव्यक्ति के रूप में समाज के बीच आता है। लोकसाहित्य में प्राचीन काल के विविध आख्यान,जीवन दर्शन के तत्व तथा सभ्यता एवं संस्कृति के कई रूप निहित होते है। मानव व्यवहार के कौशल को मौलिकता के साथ लोकसाहित्य ही प्रकट कर सकता है।

डॉ. रघुवंश के शब्दों में –"लोक की अभिव्यक्ति को साहित्य कहते के साथ ही यह मान लिया गया है कि लोकगीत तथा गाथाओं आदि लोक काव्य के रूप हैं। साहित्य जीवन का सृजन ,पुनः जीने की प्रक्रिया है। लोकाभिव्यक्ति के क्षणों में भी समाज के बीच व्यक्ति अपनी सजगता में प्रमुखतः जीवन का अनुभव करता है।''

डॉ. उर्वादत्त उपाध्याय ने लोकसाहित्य के सांस्कृतिक महत्त्व को प्रकट करते हुए कहा है कि लोक संस्कृति शिष्ट संस्कृति की सहायक होती है। किसी देश के धार्मिक विश्वासों,अनुष्ठानों तथा क्रियाकलापों के पूर्ण परिचय के लिए दोनों संस्कृतियों में परस्पर सहयोग अपेक्षित रहता है।'

डॉ. गणेशदत्त सारस्वत लिखते हैं, 'वाणी के द्वारा प्रकृत रूप में लोकमानस की सरल, निश्छल एवं अकृत्रिम अभिव्यक्ति ही लोकसाहित्य है। इसमें जनजीवन का समग्र उल्लास उच्छवास,हर्ष-विषाद,आशा आकांक्षा,आवेग उद्वेग,सुख दुख तथा हास रुदन का समावेश रहता है।'

इन परिभाषाओं के आलोक में लोकसाहित्य की विशेषताओं को इस प्रकार निर्धारित किया जाता है-

1. लोकसाहित्य व्यक्तिगत सत्ता से ऊपर उठकर समष्टिगत सत्ता का प्रतिनिधित्व करता है।
2. इसमें वाचिक अभिव्यक्ति प्रधान होती है।
3. लोकसाहित्य प्रकृतिपरक होता है इसमें लोक जीवन की शीतल छांव महसूस की जा सकती है।

4. लोकसाहित्य की कतिपय विधाओं के निर्माता अज्ञात रहते हैं।

5. इसमें मौलिकता तथा सजकता होती है।

6. यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्वच्छंद रूप से हस्तान्तरित होती रहती है।

4. लोक की सत्यानुभूति तथा पैराणिक आख्यान स्पष्ट दिखाई देते हैं।

अतः कहा जा सकता है कि लोकसाहित्य लोक जीवन के विविध पक्षों का उद्घाटन करता है। इसमें अर्थवत्ता के साथ साथ रसज्ञता भी होती है।

6.3.2 लोक साहित्य और लोकवार्ता

लोकवार्ता शब्द अंग्रेजी के फोक(Folk) तथा लोर(Lore) के मेल से बना है।फोकलोर शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम इंग्लैण्ड के पुरातत्त्व विज्ञानी विलयम जॉन टामस ने लोकसाहित्य एवं लोकसंस्कृति के लिए किया। बाद में डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने इसे हिन्दी में 'लोकवार्ता' नाम से पारिभाषित किया। उन्ही के शब्दों में - 'लोकवार्ता एक जीवित शास्त्र है। उतना ही लोकवार्ता का विस्तार है, लोक में बसने वाला जन ,जन की भूमि और मौलिक जीवन तथा तीसरे स्थान में उस जन की संस्कृति,इन तीनों क्षेत्रों में लोक के पूरे ज्ञान का अन्तर्भाव होता है और लोकवार्ता का सम्बन्ध इन्ही के साथ है।दरअसल लोकवार्ता समाज के निम्न वर्गों के वैचारिक क्रिया व्यापारों को पारिभाषित करती है। पश्चिमी देशों में निवास कर रही आदिवासी जन समुदायों के भाषा शास्त्रीय अध्ययन तथा लोक मनोवैज्ञानिक अध्ययन के फलस्वरूप फोकलोर की विधा विकसित हुई।हिन्दी में कई विद्वानों द्वारा लोकवार्ता शब्द का प्रयोग किया गया है। लोकसाहित्य के कुशल अध्येता डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार, 'लोकवार्ता लोकमानस एवं लोकतत्व का गहन,मनोवैज्ञानिक एवं मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन है।' सुनीतिकुमार चटर्जी ने लोकवार्ता को 'लोकयान' माना है। हजारी प्रसाद द्विवेदी इसे 'लोकसंस्कृति'मानते हैं अन्य विद्वानों ने इसे लोकविज्ञान,लोकप्रतिभा,लोकप्रवाह,लोकज्ञान, लोकशास्त्र तथा लोकसंग्रह आदि के रूप में ग्रहण किया है।

लोक साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान प्रोफेसर डी.एस.पोखरिया ने अपना अभिमत प्रस्तुत करते हुए कहा है , 'लोकसाहित्य लोकवार्ता का एक अंग है, किन्तु अंग होते हुए भी वह एक स्वतंत्र और पृथक विद्या है। लोकवार्ता का क्षेत्र वृहत और व्यापक है। लोकवार्ता में लोक परम्पराओं प्रथाओं और लोकविश्वासों लोकसाहित्यों नृतत्व समाजशास्त्र भाषाशास्त्र इतिहास तथा पुरातत्व आदि सबका अध्ययन समाविष्ट है। यह संपूर्ण लोकसंस्कृति का व्यापक अध्ययन करने वाला गतिशील विज्ञान हैं।यहाँ हमें इस बात को मानना पड़ेगा कि लोक में उत्पन्न हुई विधा लोकविधा तो कही जा सकती हैं। अर्थात उसे लोकसाहित्य तो आसानी से कहा जा सकता हैं, किन्तु जो विधा परिमार्जित होकर मनोविज्ञान की गूढ़ संकल्पनाओं का बोध कराती हुई आदिमजातीय तथ्यों से परिचित कराती है। उसे लोकवार्ता कहने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए। विस्तृत क्षेत्र में आप लोकवार्ताके प्रभाव को देखेंगे तथा उस वार्ता के जरिए साहित्यसम्मत उद्देश्यों के वैज्ञानिक प्रभावों का ज्ञान भी आसानी से प्राप्त कर सकेंगे।

लोकसाहित्य जहाँ केवल अनुभूति की साहित्यिक विधाओं को प्रकट करता है, वहीं लोकवार्ता समष्टिगत ऐतिहासिक तथ्यों, पुरातात्विक मान्यताओं एंव भाषाशास्त्र के लक्षणों को भी रूपायित करती है। इससे हमें इन दोनों को समझने में आसानी हो जाती है।

6.3.3 लोकसाहित्य और परिनिष्ठत साहित्य

आप साहित्य के विषय में पढ़ते आए हैं। यहाँ हम लोकजीवन के साहित्य के विविध रूपों को समझने का प्रयास करेंगे।परिनिष्ठित साहित्य को लिखित साहित्य भी कहा जाता है। जो साहित्य सुदीर्घ साहित्य परंपरा का निर्वहन करता हुआ लोक की भावभूमि से उठकर मानकों,परिष्कार की सीढ़ियाँ चढ़ने लगता है, उसे हम अभिजात या परिनिष्ठित साहित्य के नाम से जानते हैं।अभिजात साहित्य का प्रदुर्भाव लोक साहित्य से हुआ माना जाता है। उदाहरण के लिए कुमाऊँ क्षेत्र की जागर परंपरा को ही ले लें। जागर एक कुमाउनी लोक नृत्य की गायन शैली मिश्रित विधा है। जागर लगाने का क्रम इतिहास काल में प्रारंभ से माना जाता रहा है। अशिक्षित जागर गायक वर्षो से अपने दन्तवेद से इस विधा को संजोए हुए है। कतिपय स्थितियो में हम पाते हैं कि जागर के कुछ नमूने विचित्र भाषा में लिखे गए प्राचीन भोजपत्रों या अन्य पत्रों में मिलते हैं, किन्तु जागर गाने वाला जगरिया इस लिखित पत्रों को देखे बिना सुन्दर लयात्मक अंदाज में जागर लगाता है। इससे स्पष्ट होता है कि वर्षो से चली आ रही मौखिक परंपरा स्वंय में पुष्ट है। उसमे अभिव्यक्ति की ठोस क्षमता है। किन्तु कालान्तर में विकास के साथ साथ जागर जैसी अन्य कई गायन शैलीपूर्ण विधाएँ टेपरिकार्डर आदि के माध्यम से ध्वन्यालेखित होती गई। उसका अभिजात या लिखित साहित्य में परिवर्तन होता गया।

परिनिष्ठत साहित्य के विषय में देव सिहं पोखरिया लिखते हैं, 'लोकसाहित्य परंपरा मौखिक रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी चलती आई। साहित्य लिखित और परिष्कृत रूप ''अभिजात'' नाम से अभिहित किया जाता रहा। लोक की यह परंपरा ही विकास और परिवर्द्धन के विविध सोपानों को पार करती हुई लोक कवि के कंठ में पीयूषवर्षी वीणा के समान अमृत वर्षा करती रही। वेदों का ''श्रुति '' नाम भी इस बात का परिचायक है कि वैदिक परंपरा भी अपने प्रारंभिक रूप में मौखिक रूप में प्रचलित थी। इसलिए वैदिक साहित्य को लोक जीवन की आदि सम्पदा कहा जाता सकता है। बाद में लक्षणकारों द्वारा लैकिक साहित्य को शास्त्रीय रूप प्रदान किया गया। निरंतर प्रगतिशील परिवर्तन शील सभ्यता और संस्कृति लोकमानस के परिवर्तन की स्थितियों के साथ ही साहित्य के स्वरूप को भी परिवर्तित करती रही। समय के साथ ही उसमें गति, युगबोध और मूल्यों की नवीनता ने प्रकृष्ट रूप से स्थान प्राप्त किया। इसी कारण लोककवि वैदिक परंपरा से भी आगे बढ़ आया और लोक जीवन के साथ ही उसके अनुभूति और अभिव्यक्ति पक्ष भी परिवर्तित होकर नए आयामों का रेखांकन करने लगे।'

उपर्युक्त अभिमतों तथा परिभाषाओं के आलोक में आप लोकसाहित्य को मौलिक सहज तथा परंपरा से चली आ रही लोक सम्मत विधा मानेंगे तथा लोकसाहित्य का सुव्यवस्थित , अभिजात तथा लिखित स्वरूप को परिनिष्ठित साहित्य के रूप में समझ सकेंगे।

बोध प्रश्न

(क) सही विकल्प का चयन कीजिए

1. परिनिष्ठित साहित्य को क्या कहा जाता है ?

   क. लोकसाहित्य

   ख. ग्राम साहित्य

   ग. अभिजात साहित्य

   घ. आदिम साहित्य

2. लोकसाहित्य की परिभाषा दीजिए तथा अपने शब्दों में उसकी संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।

3. लोकवार्ता से आप क्या समझते हैं?

6.4 कुमाउनी लोकसाहित्य का इतिहास

कुमाऊँ में आरंभिक काल से प्रचलित मौखिक साहित्य को लोकसाहित्य कहा जाता है।यद्यपि कुमाउनी में हमें दो प्रकार का साहित्य मिलता है, किन्तु मौखिक परंपरित साहित्य के निर्माता रचयिता अज्ञात होने के कारण लोगों के दन्तवेद या टेपरिकार्डर आदि के माध्यम से लोकसाहित्य यत्र तत्र किसी रूप में उपलब्ध हो जाता है। कुमाउनी लोकसाहित्य के इतिहास पर दृष्टि डालने से हमें पता चलेगा कि जिन रचनाकारों के कालक्रम का हमें पता है या जिनके द्वारा लिखा गया साहित्य हमें उपलब्ध है, हम उसे इतिहास में जोड़ते हुए लिखित या मौखिक का भेद किए बिना अध्ययन की समग्र सामग्री के रूप में स्वीकार करेंगे।

कुमाउनी भाषा में कविता, कहानी , निबंध तथा नाटक तथा अन्य विधाओं की रचनाओं का उल्लेख हुआ है। इतिहास काल में समय समय पर विभिन्न शासनों का प्रभाव यहाँ के साहित्य पर भी पड़ा। इसीलिए संस्कृत,बगंला,उर्दू आदि भाषाओं का प्रभाव भी कुमाउनी लोकसाहित्य में देखा जा सकता है।

प्रो. शेर सिंहबिष्ट के अनुसार, " कुमाउनी में लिखित शिष्ट साहित्य की परंपरा अधिक प्राचीन नहीं है। यद्यपि लिखित रूप में कुमाउनी भाषा का प्रयोग ग्यारहवी सदी से उपलब्ध ताम्रपत्रों, सनदों एवं सरकारी अभिलेखों में देखने को मिलता है,परन्तु साहित्यिक अभिव्यक्ति के रूप में उसका लिखित रूप गुमानी (1790-1846 ई.) से प्रारंभ होता है। गुमानी ने जिस तरह की परिष्कृत कुमाउनी का प्रयोग अपनी कविताओं में किया है, उससे लगता है कि उससे पूर्व भी कुमाउनी में साहित्य लिखा जाता रहा होगा। लेकिन उसकी कोई प्रामाणिक जानकारी अभी तक सामने नहीं आ पाई है।

कुमाउनी के लिखित साहित्य को प्रकाश में लाने का श्रेय तत्कालीन स्थानीय अखबारों को जाता है जिसमें 'अल्मोड़ा अखबार', 'कुमाऊँ कुमुद', 'शक्ति','अचल' आदि प्रमुख हैं। डॉ. विष्ट ने कुमाउनी के लिखित साहित्य को कालक्रमानुसार तीन चरणों में बाटा है-

प्रारंभिक काल (1800 ई. से 1900 ई.)

मध्य काल (1900 ई. से 1950 ई.)

आधुनिक काल (1950ई. से अब तक)

कुमाउनी साहित्य का प्रारंभिक दौर काफी उतार चढ़ावों से भरा था। सन् 1790ई. में चन्द शासक के पतन के फलस्वरूप कुमाऊँ क्षेत्र गोरखा शासन के अधीन हो गया था। इसके उपरांत सन् 1815 में कुमाऊँ अंग्रेजी शासक के कब्जे में आ गया। प्रत्येक शासन काल में तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक परिदृश्य का असर उस समय की रचनाओं पर पड़ा। गुमानी पन्त ने अंग्रेजी शासन के विरूद्ध कविताओं के माध्यम से आवाज उठाई। गुमानी पतं को लिखित कुमाउनी साहित्य का प्रथम कवि माना जाता है। इनका जन्म सन् 1790 में काशीपुर में हुआ। इन्होंने रामनाम, पंचपंचाशिका,राममहिमा वर्णन,गंगाशतक,रामाष्टक जैसी महान कृतियों की रचना की। इनका अवसान सन् 1848 ई. को हुआ। गुमानी के समकालीन कवि कृष्णापाण्डे (सन् 1800-1850 ई.) का जन्म अल्मोड़ा के पाटिया नामक ग्राम में हुआ था। इनकी रचनाओं में भी सामाजिक यथार्थ का चित्रण मिलता है। इनकी फुटकर रचनाओं में 'मुलुक कुमाऊँ' तथा 'कलयुग वर्णन' प्रमुख हैं। सन् 1848 ई. में फल्दाकोट में जन्मे शिवदत्त सती मध्यकालीन कुमाउनी कवि हैं। ये वैद्यक थे। इन्होंने घस्यारी नाटक मित्र विनोद नामक पुस्तकें लिखी।

गौरीदत्त पाण्डे 'गौर्दा' भी मध्यकालीन कुमाउनी कवियों में अपना अलग स्थान रखते हैं। इनका जन्म 1872 ई. को देहरादून में हुआ तथा मृत्यु 1939 ई. को हुई। इनकी रचनाओं की प्रासंगिता के कारण हम इन्हें वर्तमान पाठ्यक्रम में भी पढ़ते है। इनकी कविताओं का संकलन 'गौरी गुटका' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अलावा इनकी अन्य महत्त्वपूर्ण रचनाएँ प्रथम वाटिका तथा छोडों गुलामी खिताब है। अंग्रेजी शासक के अत्याचारों के विरूद्ध इन्होने बड़ा काव्यांदोलन किया था।आधुनिक युग के छायावादी काव्य के आधार स्तंभ सुमित्रानंदन पंत का जन्म अल्मोड़ा जनपद के कौसानी नामक ग्राम में हुआ था। इनकी कुमाउनी में 'बुरूश'नामक कविता प्रकृति का साक्षात निरूपण करती है। पंत जी का हिन्दी साहित्य जगत में भी बहुत बड़ा नाम है।श्यामाचरण पंत (1901 ई. से 1967) का जन्म रानीखेत में हुआ। इनके द्वारा कई फुटकर रचनाएँ लिखी गई। कुमाऊँ के जोड़ एवं भगनौल विधा के ये एक अच्छे ज्ञाता थे। 'दातुलै धार ' इनकी विख्यात प्रकाशित पुस्तक है।

अल्मोड़ा में सन् 1910 को जन्में चन्द्रलाल चौधरी ने कुमाऊँकी प्रसिद्ध लोक विधा कहावतों पर आधारित पुस्तक 'प्यास' सन् 1950 में लिखी । इनका निधन वर्ष 1966 में हुआ। इनके अलावा मध्यकालीन कुमाउनी कवियों में जीवनचन्द्र जोशी, तारादत्त पाण्डे,जयन्ती पंत,बचीराम,हीराबल्लभ शर्मा,ताराराम आर्य,कुलानन्दभारतीय तथा पीताम्बर पाण्डे का नाम उल्लेखनीय है।सन् 1950 से लेकर वर्तमान समय तक का रचनाकाल आधुनिक काल कहलाता है। स्वतंत्रता के बाद कुमाउनी रचनाकारों की रचनाओं में आए बदलाव को हम आसानी से देख सकते है। समय के साथ साथ ठेठ कुमाउनी का रूप मानक भाषा की तरफ बढ़ता दिखाई देता है। युगीन प्रभाव के साथ साथ रचनाओं के अर्थग्रहण शैली में परिवर्तन देखा जा सकता है।

आधुनिक युग के कवियों में सर्वप्रथम चारूचंद पाण्डे का नाम उल्लेखनीय है। इनका जन्म सन् 1923 को हुआ। इनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'अड.वाल' सन् 1986 में प्रकाशित हुआ। इन्होंने पूर्ववर्ती कवि गौर्दा के काव्य दर्शन पर चर्चित पुस्तक लिखी। लोकसाहित्य के मर्मज्ञ ब्रजेन्द्र लाल साह का जन्म 1928 ई. को अल्मोड़ा में हुआ। रंगमंच से जुड़ाव होने के कारण इनकी रचनाओं को पर्याप्त प्रसिद्धि मिली है। इसी क्रम में नंदकुमार उप्रेती जिनका जन्म सन् 1930 को पिथौरागढ़

में हुआ, अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। इनकी 'भुलिनिजान आपुण देश',तीन कांड प्रकाशित पुस्तकें हैं। आधुनिक कुमाउनी के लोकप्रिय कवि शेर सिहं विष्ट 'अनपढ़' सन् 1933 में जन्मे थे। गीत एवं नाटक प्रभाग के एक जाने माने हास्य कलाकार के रूप में भी उनका नाम जन जन की जुबान पर आज भी है। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं- 'मेरि लटि पटि', 'जाँठिक घुड़ु.र', तथा 'फच्चैक (बालम सिहं जनोटी के साथ)।बंशीधर पाठक 'जिज्ञासु' का जन्म 1934 ई. को अल्मोड़ा में हुआ । इनकी सुप्रसिद्ध रचना 'सिसौण' है। हिन्दी साहित्य के जाने माने मूर्धन्य साहित्यकार रमेशचन्द्र साह का जन्म स्थान अल्मोड़ा है। इन्हें 'पद्म श्री' तथा 'व्यास सम्मान' जैसे महानतम अलंकरणों से विभूषित किया जा चुका है। 'उकाव हुलार' इनकी कुमाउनी में प्रतिष्ठित पुस्तके है। श्रीमती देवकी महरा का जन्म सन् 1937 ई. को अल्मोड़ा में हुआ। इनकी पुस्तकों में वेदना तथा विरहानुभूति दिखाई देती है। 'प्रेमाजंलि', 'स्वाति', 'नवजागृति' तथा उपन्यास 'सपनों की राधा' इनकी प्रकाशित कृतियाँ है।सन् 1939 को बेरीनाग के गढ़तिर नामक ग्राम में जन्मे बहादुर बोरा 'श्रीबंधु'की रचनाएँ विविध पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं इनकी रचनाओं में राष्ट्रीयता की झलक मिलती है। मथुरादत्त मठपाल कुमाउनी के एक लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार हैं। इनका जन्म सन् 1941 को भिक्यासैण (अल्मोड़ा) में हुआ। ये 'दुदबोलि' कुमाउनी पत्रिका का संपादन वर्षों से करते आ रहे हैं।

इसके अतिरिक्त कुमाउनी साहित्य में अनेक पुरोधा रचनाकारों के नाम उल्लेखनीय हैं- यथा गोपाल दत्त भट्ट ,भवानीदत्त पंत, दीपाधार, हीरा सिहं राणा, गिरीश तिवारी 'गिर्दा',महेन्द्र मटियानी, दुर्गेश पंत,राजेन्द्र बोरा (अब त्रिभुवन गिरी), जुगल किशोर पेटशाली, बालम सिहं जनोटी,दामोदर जोशी 'देवांशु' डॉ. शेरसिहं विष्ट ,डॉ. देवसिहं पोखरिया , जगदीश जोशी, रतन सिहं किरमोलिया, उदय किरौला, दीपक कार्की, हेमन्त विष्ट, श्याम सिहं कुटौला, डॉ. दिवा भट्ट , मोहम्मद अली अजनबी, रमेश पाण्डे राजन, देवकी नंदन काण्डपाल, महेन्द्र सिहं महरा 'मधु' सहित वर्तमान के अन्य लेखक एवं कवि।

6.4.1 कुमाउनी लोकसाहित्य तथा कुमाउनी साहित्य

युग युगों से लोकमानस की स्वच्छंद स्वतंत्र अभिव्यक्ति को लोकसाहित्य की परिधि में रखा जाता है। यहाँ आप 'जो लिखा ना गया हो किन्तु गाया गया ' को लोकसाहित्य समझेंगे , लोक की भावभूमि पर मौलिक और स्वाभाविक रूप से जो कुछ उच्चरित होता रहा या वह लोकरंजक गुणों से परिपूर्ण था, जिसे तत्कालीन व अद्यतन समाज ने ज्यों का त्यों ग्रहण किया, को लोकसाहित्य कहना उचित प्रतीत होता है। हालाँकि कालान्तर में यही वाचिक अभिव्यक्ति परिनिष्ठित या लिखित साहित्य के रूप में सर्व समाज के समक्ष आई, किन्तु अपने उद्भव एवं विकास काल से जो कुछ बुजुर्गों के मुख से गाया गया तथा सुना गया उसे लोक का साहित्य या लोकसाहित्य कहा गया। उदाहरण के लिए फूलदेई के त्योहार में बच्चें घर घर जाकर फूल चढ़ाते हुए कहते हैं ।-

"फूल देई छम्मा देई
दैणौ द्वार भर भकार
त्वी देली सो नमस्कार।"

घुघुतिया त्यार (मकर संक्रान्ति) पर्व पर कुमाऊँ में कौवे बुलाने का प्रचलन है-

"काले कव्वा काले

घुघुती मावा खा ले
तु ल्हि जा बड़
म्यकैं दिजा सुनु घड़ा ''

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त परंपरा आरंभिक काल से चली आ रही है। इसका प्रदुर्भाव कैसे हुआ ? ये किसने रचा? इस संबंध में कोई सटीक उत्तर प्राप्त नहीं होता। जो पढ़ना लिखना कभी नहीं जानते थे। वे लोग भी इसे आसानी से कह जाते है।लिखित साहित्य के अस्तित्व में आते ही समस्त या कुछ कुछ वाचिक परंपराओं का प्रतिफलन लिखित साहित्य में किया जाने लगा।अतः कहा जा सकता है कि वर्तमान दौर में भी कतिपय लोक सम्मत विधाएँ ऐसी है जिन्हें केवल दन्तवेद के द्वारा ही अनुभूत किया जा सकता है। अनुभूति के धरातल पर उर्वर लोकमानस की उपज ही लोकसाहित्य है।

कुमाउनी साहित्य लोकसाहित्य का ही लिखित एवं परिमार्जित रूप है। मध्यकालीन तथा आधुनिक कालीन कुमाउनी लोकसाहित्य की परंपरा का विशुद्ध लिखित रूप कुमाउनी साहित्य के नाम से जाना जाता है। कुमाऊँ क्षेत्र की विविध भाषा बोलियों में कुमाउनी लोकसाहित्य तथा लिखित साहित्य उपलब्ध होता है। डी0 एस0 पोखरिया ने लिखा है, ' परिनिष्ठत या अभिजात साहित्य को लिखित साहित्य के रूप में कुमाउनी साहित्य के नाम से अभिहित किया जाता है।परिनिष्ठित साहित्य में युगीन परंपराओं को मर्मज्ञ अपने दृष्टिकोण से अभिव्यक्त करता है। इस साहित्य में क्रमिक विकासवादी दृष्टिकोण से रचनाकार ठेठ भाषा का परिमार्जन कर विषयवस्तु को ग्राहय बनाता है।कुमाउनी लोकसाहित्य के ध्वन्यालेखन तथा मुद्रण आदि से कुमाउनी साहित्य का अस्तित्व बहुत विकसित हुआ है। कुमाउनी साहित्य के परिनिष्ठित स्वरूप पर शोधकार्य करने वाले अनुसंधाताओं को विषयवस्तु को समझने में आसानी हो जाती है। कुमाउनी लिखित साहित्य के द्वारा नवीन भावबोधों एवं कलापक्ष पर आसानी से विवेचना की जा सकती है। कुमाउनी साहित्य में लोकसाहित्य की तरह गेयता को लिखने या अभिव्यक्त करने में कठिनाई जरूर होती है, फिर भी गेय विधाओं को कुमाउनी साहित्य में आसानी से लिखने के लिए हलन्त तथा अन्य स्वर व्यंजनों को यथास्थान अंकित किया जाता है ताकि पाठकवर्ग या विद्यार्थी उसे आसानी से समझ सकें।

6.4.2 कुमाउनी लोकसाहित्य का वर्गीकरण

कुमाउनी लोकसाहित्य को विभिन्न विद्वानों ने अपने अपने ढ़ग से वगीकृत किया है।प्रो. पोखरिया के अनुसार, 'परिनिष्ठित या अभिजात साहित्य की भाँति देखने व सुनने की योग्यता के आधार पर कुमाउनी लोकसाहित्य के भी दो भेद किये जा सकते हैं- (1)श्रव्य और (2)दृश्य । कुमाउनी लोकसाहित्य की कई विधाओं में श्रव्य और दृष्य के गुण एक साथ पाए जाते हैं कुमाउनी के झोड़ा ,चाँचरी, छपेली आदि गीत रूप श्रव्य भी हैं और दृश्य भी। 'लोक जीवन की अभिव्यक्ति को प्रायः गेय शैली में देखा सुना जा सकता है। लयात्मक आधार पर कुमाउनी लोकसाहित्य को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है', (1)पद्य (2)गद्य तथा (3)चम्पू (गद्य पद्यात्मक विधा)पद्य के अन्तर्गत विविध,लोकगीत, गद्य के

अन्तर्गत लोककथा,मुहावरे,कहावतें तथा मंत्र साहित्य तथा चम्पू के अन्तर्गत गद्य,पद्य मिश्रित लोकगाथाएँ आती हैं। प्रो. पोखरिया ने कुमाउनी लोकसाहित्य का वर्गीकरण अधोलिखित बिन्दुओं के आधार पर किया है-

(1) लोकगीत

(2) लोकगाथा

(3) लोककथा

(4) लोकोक्ति या कहावत

(5) मुहावरे

(6) पहेलियाँ

(7) लोकनाट्य तथा

(8) प्रकीर्ण लोक साहित्य।

डॉ. कृष्णानंद जोशी ने बटरोही द्वारा पुस्तक 'कुमाउनी संस्कृति ' में कुमाऊँ का लोकसाहित्य विषयक वर्गीकरण इस प्रकार किया है-

(1) पद्यात्मक (गेय)
(अ) धार्मिक गीत
(ब) संस्कार गीत
(स) ऋतु गीत
(द) कृषि गीत
(इ) उत्सव तथा पर्व संबंधी
(ई) मेलों के गीत
(य) परिसंवादात्मक गीत
(र) न्योली तथा जोड़
(ल) बालगीत
(2) गद्य पद्यात्मक (चम्पू काव्य)
(अ) प्रेम प्रद्यान काव्य: मालूसाही
(ब) वीरगाथा काव्य: भड़ौ- (सकराम कार्की, अजीत बोरा,रणजीत बोरा,सालदेव, जगदेव पंवार आदि)
(स) लोक काव्य – रमोला
(द) ऐतिहासिक गाथाएँ
(3) गद्य

(अ) लोक कथाएँ

(ब) लोकोक्तियाँ

(स) पहेलियाँ

(द) लोक प्रचलित जादू टोना

इस प्रकार हम देखते हैं कि यहाँ लोकसाहित्य के ज्ञाताओं ने कुमाउनी लोकसाहित्य को लगभग एक समान रूप से वर्गीकृत किया है। आप दोनों वर्गीकरणों की तुलना से पाएँगे कि मुख्य रूप से गद्य पद्य तथा चम्पू काव्य वर्गीकरण का मुख्य आधार हैं। इस के बाद उप शीर्षकों में गेयता के आधार पर वर्गीकरण किया गया है। गद्य पद्य तथा चम्पू काव्य के अन्तर्गत उपबिन्दुओं को समझते हुए हम कुमाउनी लोकसाहित्य का विशद वर्गीकरण कर सकेंगे

बोध प्रश्न

(1) कुमाउनी लोकसाहित्य के वर्गीकरण को संक्षेप में समझाइए

(2) आधुनिक काल के चार कुमाउनी रचनाकारों के नाम तथा उनकी रचनाओं के नाम लिखिए

सही विकल्प चुनिए

3 (क) दृश्य श्रव्य लोकगीत है-

(अ) चाँचरी

(ब) न्योली

(स) संस्कार गीत

(द) जोड़

(ख) 'भड़ौ' किस प्रकार का काव्य है ?

(अ) प्रेमप्रधान काव्य

(ब) लोक काव्य

(स) वीरगाथा काव्य

(द) ऐतिहासिक गाथा

6.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

कुमाउनी लोकसाहित्य का अर्थ एवं परिभाषा समझ चुकें होंगे।

कुमाउनी लोकसाहित्य और परिनिष्ठित साहित्य के बारे में ज्ञान प्राप्त कर चुकें होंगे।

कुमाउनी के उद्भव एवं विकास की जानकारी प्राप्त कर चुकें होंगे।

कुमाउनी लोकसाहित्य तथा लिखित साहित्य के विद्वानों के विचारों से अवगत हो चुके होंगे ।

कुमाउनी लोकसाहित्य के वर्गीकरण को समझ गए होंगे।

6.6 पारिभाषिक शब्दावली

परिनिष्ठित - लिखित

अभिजात - सभ्य , सुसंस्कृत

वाचिक - मौखिक

पर्यवसान - निथार या सार

ध्वन्यालेखन - टेपरिकार्डर से सुनकर लिखना

जागर - जागरण,एक कुमाउनी लोकनृत्य

चम्पू - गद्य तथा पद्यात्मक काव्य

पीयूषवर्षी - अमृत बरसाने वाली

गेय - गाने योग्य

परिमार्जन - शुद्ध करना

अन्तर्भाव - आत्मसात या ग्राह्यता का गुण

दन्तवेद - वाणी द्वारा उच्चरित

6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1 (क) अभिजात साहित्य

अति लघुउत्तरी प्रश्नों के उत्तर

2

(अ) शेर सिहं विष्ट ‘अनपढ़’, रचनाएँ ‘मेरि लटि पटि’, ‘जांठिक घुड़ु.र’, ‘हसणै बहार’

(ब) गोपालदत्त भट्ट -’अगिनि आँखर’, ’फिर आल फागुण’,’गहरे पानी पैठ’,’आदमी के हाथ’।

(स) देवकी महरा - 'सपनों की राधा', 'नवजागृति', 'स्वाति' ,'प्रेमांजलि'।

(द) शेर सिहं विष्ट - 'भारत माता', ईजा', उच्चैण।

3 (क) चाँचरी

(ख) वीरगाथा काव्य

6.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1पोखरिया,देव सिहं, लोक संस्कृति के विविध आयामः मध्य हिमालय के संदर्भ में, प्रथम संस्करण,1994,पृ -2-7

2. हिन्दुस्तानी,भाग 20 अंक 02 अप्रैल - जून 1959 में 'लोकवार्ता शीर्षक निबंध '

3. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन, डॉ. सत्येन्द्र, पृ -3

4. लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि , डॉ. विद्या चौहान, पृ - 41

5. लोक साहित्य विज्ञान, डॉ. सत्येन्द्र ,पृ -4

6 .हिन्दी साहित्य कोश, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, पृ - 682

7. हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास,भाग - 16 प्रस्तावना, पृ - 14

8. कुमाउनी भाषा और साहित्य का उद्भव एवं विकास डॉ. शेर सिहं विष्ट, पृ -109 -112

9. उत्तराँचल पत्रिका ,सं0 दीपा जोशी,नई दिल्ली, पृ -32

6.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य साम्रगी

(1) कुमाउनी संस्कृति , सं. बटरोही ,रूद्रपुर

(2) कुमाउनी लोकसाहित्य,डॉ. देवसिहं पोखरिया,डॉ. डी. डी.तिवारी,अल्मोड़ा

(3) कुमाऊँ की लोकगाथाओं का साहित्यिक व सास्ंकृतिक अध्ययन, डॉ. उर्वादत्त उपाध्याय , बरेली

(4) कुमाउनी भाषा और उसका साहित्य डॉ.त्रिलोचन पाण्डे, उत्तर प्रदेश हिन्दीसंस्थान,लखनऊ

(5) कुमाऊँ हिमालय: समाज एवं संस्कृति , डॉ. शेरसिहं बिष्ट, अल्मोडा

(6)कुमाउनी भाषा,साहित्य और संस्कृति, डॉ. देवसिहं पोखरिया, अल्मोड़ा

(7) कुमाऊँ का इतिहास, बद्रीदत्त पाण्डे, अल्मोड़ा

6.10निबंधात्मक प्रश्न

(1) कुमाउनी लोकसाहित्य का परिचय देते हुए इसके महत्त्व पर प्रकाश डालिए।

(2) कुमाउनी लोकसाहित्य का वर्गीकरण कीजिए तथा इसके गद्य एवं पद्य स्वरूप की विवेचना कीजिए।

(3) लोकसाहित्य क्या है? कुमाउनी परिनिष्ठित एवं लोकसाहित्य का स्वरूप निर्धारण कीजिए।

इकाई 7 : कुमाउनी लोकगाथाएँ - इतिहास स्वरूप एवं साहित्य

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 कुमाउनी लोकगाथाओं का इतिहास एवं स्वरूप
    7.3.1 कुमाउनी लोकगाथाएँ : अर्थ एवं स्वरूप
    7.3.2 कुमाउनी लोकगाथाएँ:ऐतिहासिक स्वरूप
    7.3.3 कुमाउनी लोकगाथाओं की विशेषताएँ
7.4 कुमाउनी लोकगाथाओं का भावपक्षीय वैशिष्ट्य
    7.4.1 कुमाउनी लोकगाथाओं में प्रकृति चित्रण
    7.4.2 कुमाउनी लोकगाथाओं में निहित स्थानीय तत्व
7.5 कुमाउनी लोकगाथाओं का वर्गीकरण
7.6 सारांश
7.7महत्त्वपूर्ण शब्दावली
7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
7.10 सहायक पुस्तक सूची
7.11 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

किसी भी राष्ट्र की अपनी लोकसंस्कृतिक पहचान होती है। ये पहचान उस राष्ट्र के लोकजीवन में जीवंत लोकसाहित्य के विविध पहलुओं द्वारा चरितार्थ होती है। आप देखेंगे कि सभ्यता और संस्कृति के आधारभूत तथ्य ही एक गौरवशाली अतीत से लोगों को परिचित कराते हैं। कुमाउनी लोकगाथाएँ भी यहाँ के ऐतिहासिक स्वर्णिम अतीत का परिचय प्राप्त कराती हैं। आदिकाल से प्रचलित लोककथात्मक आख्यानों की गवेषणा लोकगाथाओं के रूप में हमारे समक्ष आती हैं। इस इकाई के प्रारंभ में कुमाउनी लोकगाथाओं का अर्थ प्रस्तुत करते हुए उसके इतिहास एवं स्वरूप पर चर्चा की जाएगी। कुमाउनी लोकगाथाओं की विशेषताओं का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए उनके भावपक्षीय पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। स्थानीय तत्व तथा प्रकृति चित्रण से लोकगाथाएँ कितनी प्रभावशाली सिद्ध हुई हैं। इस पर भी व्यापक दृष्टि डाली गई है। इकाई के उत्तरार्द्ध में कुमाउनी लोकगाथाओं का वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है।

लोकगाथाओं में निहित सांस्कृतिक तत्वों के समाजबद्ध अध्ययन के फलस्वरूप प्रस्तुत इकाई उपादेय समझी जा सकती है।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप -

कुमाउनी लोकगाथाओं के इतिहास एवं स्वरूप को जान सकेंगे।

कुमाउनी लोकगाथाओं में निहित तत्कालीन पात्रों के चरित्रों की प्रासंगिकता को समझ सकेंगे।

लोकगाथाओं के विविध रूपों को वर्गीकरण के आधार पर समझ जाएंगे।

लोकगाथाओं की विशेषता के द्वारा कुमाउनी लोक मानस के अनुभूति पक्ष को जान पाएंगे।

यह निर्धारित कर सकेंगे कि लोकसाहित्य के विकास में कुमाउनी लोकगाथाएं किस प्रकार सहायक सिद्ध हो सकती हैं?

7.3 कुमाउनी लोकगाथाओं का इतिहास एवं स्वरूप

लोकगाथा प्राचीन आख्यानमूलक गेय रचना है। प्रारंभ से लोकपरंपरा के रूप में प्रचलित लोकगाथाओं के रचयिता सर्वथा अज्ञात हैं। जिस प्रकार वाचिक परंपरा से लोकसाहित्य की कहावतें आदि विधाएँ समृद्ध हुई हैं, ठीक उसी प्रकार लोकगाथाओं में भी प्राचीन काल की घटनाक्रम तथा चरित्रों का सतत उल्लेख होता रहा है। इतिहास काल से प्रचलित इन गाथाओं को किसने रचा? कैसे रचा? इस संबंध में सटीक कुछ नहीं कहा जा सकता। इतना जरूर है कि ये प्राचीन गाथाएं या तो महाभारत रामायण कालीन परिदृश्य को प्रकट करती हैं, या फिर तत्कालीन परिस्थितियों में लोगों द्वारा दिन रात के अथक चिंतन द्वारा अपनी मनोभावना को प्रकट करने वाली वृत्ति के रूप में परिलक्षित होती हैं।

प्रो. डी.एस. पोखरिया ने लोकगाथाओं के संबंध में कहा है-‘ लोक की भाषा अथवा बोली में पारंपरिक स्थानीय अथवा पुरा आख्यानमूलक गेय अभिव्यक्ति लोकगाथा है। इन गेय कथा प्रबंधों के लिए अंग्रेजी के फोक एपिक या बैलेड शब्द के पर्याय के रूप में हिन्दी में लोकगाथा शब्द का प्रयोग होता है। लोकगाथा का रचनाकार अज्ञात होता है। इसमें प्रामाणिक मूलपाठ की कमी होती है। संगीत और नृत्य का समावेश होता है। स्थानीयता की सुवास होती है। अलंकृत शैली का अभाव होता है। कथानक बड़ा होता है टेक पदों की आवृत्ति की बहुलता होती है। रचनाकार के व्यक्तित्व तथा उपदेशात्मकता का अभाव होता है। यह मौखिक रूप में कंठानुकंठ परंपरित होती है।

चूंकि यहां हम देखते है कि लोकगाथाओं के रचनाकार अज्ञात हैं अतः इतिहास काल क्रम को तय करना असंभव सा प्रतीत होता है। इतना अवश्य पाया जा सकता है कि इन लोकगाथाओं में निहित पौराणिक आख्यान अपने अपने समय का उल्लेख करते हैं। कुमाउनी में पौराणिक धार्मिक , वीरतापूर्ण, प्रेम परक तथा ऐतिहासिक लोकगाथाओं की प्रचलित अवस्था के अनुसार ही हम उनके स्वरूप इतिहास का मोटा अनुमान लगा पाते हैं।

कुमाउनी लोकगाथाओं में मालूसाई, आठूँ ,रितुरैण, ठुलखेत, घणेली, भड़ा आदि गाथाओं के समान कई गाथाएं प्रचलित हैं। हुड़कीबौल में भी लोकगाथा का गायन किया जाता है। संदर्भ कथा को आत्मसात करने वाली विधा के रूप में लोकगाथाएं एक अप्रतिम गेय आख्यान हैं, जो प्रारंभ से लेकर वर्तमान काल तक समाज को एक सरस भाव से आप्लावित करती रही है। कहीं-कहीं मालूसाही जैसी लोकगाथा प्रेमपरक मर्मभेदी कथा प्रसंग को प्रकट करती हैं, तो कहीं ‘जागर’ जैसी गाथा सैकड़ों छोटी -छोटी कथात्मक आख्यानों को गायन नृत्य द्वारा अभिव्यक्त करती है।

7.3.1 कुमाउनी लोकगाथाएँ : अर्थ एवं स्वरूप

कुमाउनी लोकगाथाओं को समझने से पूर्व गाथा शब्द का अर्थ जानना आवश्यक है। कुमाऊं की लोकगाथाओं पर शोधकार्य कर चुके डा. उर्वादत्त उपाध्याय का कहना है‘गाथा बड़ा ही प्राचीन शब्द है। ब्राह्मण ग्रंथों में गाथा शब्द का प्रयोग आख्यानों के लिए हुआ है। गाथा को प्राचीन प्राकृत आदि जन भाषाओं में ‘गाथा’ कहा गया है। जन साहित्य तथा प्राकृत भाषाओं में गाथा विधा इतनी प्रिय हुई है कि प्राचीन, पालि, मागधी तथा जैन प्राकृत भाषाओं में गाथा साहित्य अपनी समृद्धि के साथ विकसित हुआ।’

डॉ कृष्णदेव उपाध्याय ने हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास (ना.प्र.स.) 16वां भाग की प्रस्तावना में लोकगाथा को पारिभाषित करते हुए लिखा है- ‘लोकगाथा वह प्रबंधात्मक गीत है, जिसमें गेयता के साथ ही कथानक की प्रधानता हो।’ प्रो. कीट्रीज ने गाथा के संबंध में कहा है कि बैलेड वह गीत है, जो कोई कथा कहता हो।

न्यू इंगलिश डिक्शनरी के प्रधान संपादक का अभिमत है- ‘बैलेड वह स्फूर्तिदायक या उत्तेजनापूर्ण कविता है, जिसमें कोई लोकप्रिय आख्यान सजीव रीति से वर्णित हो।’

डॉ उर्वादत्त उपाध्याय ने उक्त परिभाषाओं के आलोक में लिखा है- ‘‘गाथा गेय तत्व से युक्त किसी लोकप्रिय आख्यान पर आधारित वह लोकप्रबंध काव्य है, जिसमें लोकजीवन की अनुभूतियां और अभिव्यक्तियों का सहज प्रयोग किया जाता है।

यहां आप देखेंगे कि कुमाउनी लोकगाथाओं में कुमाऊँ की विषम भौगोलिक स्थितियों के अनुरूप लोकमानस की अभिव्यक्ति जन-जन के जीवन को रससिक्त करती आई है। लोकगाथा अभिजात साहित्य की धरोहर नहीं है। पहाड़ के जनजीवन में स्वतः प्रस्फुटित आख्यान जब संस्कृति का अभिन्न अंग बनते गए, तब इन गाथाओं को जनजीवन ने उसी मौलिक रूप में अपनाया। इनकी मौखिक परंपरा लोकमानस का कुशल मनोरंजन एवं ज्ञान का प्रतिपादन करती आई है। लोकसाहित्य की समग्र विधाओं के अनुरूप लोकगाथाओं में चिरंतन सत्ता के प्रति एक रहस्य साधना का भाव भी दृष्टिगोचर होता है। समूचे कुमाऊँ प्रदेश में अलग-अलग भाषा बोलियों के क्षेत्र में गाथाएं गाई जाती हैं, किन्तु भाव प्रायः सब जगह एक सा रहता है।

डा. कृष्णानंद जोशी ने लोकगाथा को गद्य पद्यात्मक काव्य की कोटि में रखते हुए लिखा है-‘ ‘कुछ विद्वानों ने इस वर्ग को लोकगाथाएं नाम भी दिया है। इस वर्ग के सभी गीतों में अनेक स्थलों पर गद्य का भी प्रयोग किया गया है। गायक द्वारा यह गद्य स्थल भी विशेष लय से कहे जाते हैं, सामान्य गद्य की भांति नहीं। इन गाथाओं में मालूसाही ‘प्रेम काव्य’ कहा जाता है। वीरगाथा काव्य में जिन्हें कुमाउनी में भड़ौ (भटो-वीरों की गाथाएं) कहा जाता है। बफौल, सकराम कार्की, कुंजीपाल चंद बिखेपाल, दुलासाही, नागी भागीमल, पंचूद्योराल, भागद्यो आदि की गाथाएं भी इसी वर्ग की हैं। ऐतिहासिक घटनाओं से संबंधित गाथाओं तथा कत्यूरी और चंद राजाओं की गाथाओं- धामद्यो, समणद्यो तथा कत्यूरी और चंद राजाओं की गाथाओं- धामद्यो, समणद्यो,उदैचन्द, रतनचन्द्र भारतीचंद की ऐतिहासिक गाथाएं कहा जा सकता है। इनमें धार्मिक ऐतिहासिक वीरगाथा तथा प्रेमगाथा के तत्वों का समन्वय मिलता है। ‘रमोला’ में जिसे हम कुमाउनी का लोक महाकाव्य कह सकते हैं ,इससे स्पष्ट होता है कि गाथाओं की उत्पत्ति के पीछे लोक ऐतिहासिक घटनाक्रम निहित है। इन चरित्रों एवं घटनाओं के संदर्भ गाथाओं की उत्पत्ति के मूल कहे जा सकते हैं।

7.3.2 कुमाउनी लोकगाथाएं : ऐतिहासिक स्वरूप

कुमाउनी लोकगाथाओं को लोक महाकाव्य के नाम से जाना जाता है। इनकी उत्पत्ति एवं प्रादुर्भाव के संबंध में भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है। इतिहास के दीर्घकालीन प्रवाह में ये प्राच्य आख्यान कुछ काल्पनिक चीजों तथा कुछ सत्य घटनाओं का समन्वित स्वरूप प्रदर्शित करती हैं। इतिहास काल क्रम के आधार पर निश्चित रूप से इन लोकगाथाओं को बांधना कठिन प्रतीत होता हैं किंतु, इतिहास काल की कथाओं के आख्यान इन विभिन्न प्रकार की गाथाओं में देखे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए यदि हम नंदा देवी की बैसी को देखें तो बैसी अर्थात बाईस दिन के गायन का निरंतर क्रम हमें प्राप्त हो जाएगा।

लोकगाथाओं में प्रमुख रूप से परंपरागत, पौराणिक धार्मिक तथा वीरतापूर्ण आख्यान मिलते है। परंपरागत रूप से मालूसाही तथा रमौल की गाथा प्रचलित है। जागर नामक गाथा में पौराणिक कथाओं का सार मिलता हैं । कुमाऊं की जागर गाथाओं तथा कृषि संबंधी गाथा हुड़की बौल में यहां के पौराणिक तत्व सम्मिलित हैं।

इन गाथाओं में महाभारत तथा रामायण कालीन घटनाओं तथा चरित्रों का महिमामंडन गायन शैली द्वारा प्रकट किया जाता है। इनमें महाभारत , कृष्णजन्म, रामजन्म तथा वनगमन शिव शक्ति, चौबीस अवतारों सहित नागवंशीय परंपरा का समुद्घाटन हुआ है।

जागर में विभिन्न कालों में घटित हुई विशेष घटनाओं का उल्लेख करते हुए उन चरित्रों को आधार बनाया जाता है, जो आज के समय में भी तत्कालीन परिस्थितियों की स्मृति कराकर अवतार में परिणत हो जाते हैं। कुमाऊँ के विभिन्न लोकदेवता इन गाथाओं में समाविष्ट हैं।

कुमाऊँ के कत्यूरी चंद वंशीय शासकों का उल्लेख भी जागर में हुआ है। धामदेव, बिरमदेव तथा जियाराणी के जागर कत्यूरी राजाओं से संबंध रखते हैं। धामदेव तथा बिरमदेव को क्रूर एवं अत्याचारी शासकों के रूप में दर्शाया गया है। 'हरू' की जागर चंद वंश से संबंधित है। इसके अतिरिक्त इतिहास की वीरतापूर्ण गाथाओं, जिन्हे 'भड़ौ' कहा जाता है, में वीरोचित चरित्रों तथा उनके पराक्रम तथा रोमांच का प्रतिनिधित्व करती जनमानस को तत्कालीन शौर्यगाथा से परिचित कराती हैं। हुड़की बौल में राजा विरमा की गाथा को गायक बड़े सुरीले दीर्घ स्वर में गाता है। शेष कार्य करने वाली महिलाएँ उस गायन को सस्वर गाती हैं। जाति संबंधी गाधाओं में झकरूवा रौत, अजीत और कला भड़ारी, पचू द्योराल, रतनुवा फड़त्याल, अजुवा बफौल, माधोसिहं , रिखोला के विस्तृत वृतान्त प्राप्त होते हैं। इनमें कुछ ऐतिहासिक व्यक्तित्व हैं तथा शेष को गाथाकारों ने अपने ढ़ग से स्वयं गढ़ लिया है।

रोमांचक गाथाओं में प्रेमाख्यान मिलता है। ये गाथाएँ प्रेमपरक हैं। प्राचीन काल में किसी सुदंरी को प्राप्त करने के लिए लोग आपस में युद्ध करते थे। इस युद्ध में विजयी राजा या व्यक्ति उस वस्तु या सुदंरी को पाने का हकदार हो जाता था। इस श्रेणी के चरित्रों में रणुवारौत ,सिसाउ लली, आदि कुवाँरि, दिगौली माना, हरूहीत, सुरजू कुवंर और हंस कुवंर की गाथाओं के नाम प्रमुख हैं। इनका गायन वीररसपूर्ण होता है, जो भड़ौ में स्पष्ट दिखाई देता है। अतः आप समझ सकते हैं कि प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक विभिन्न प्रकार की लोकगाथाओं में इतिहासकालीन चरित्रों तथा घटनाओं का उल्लेख एक समान रूप से किया गया है। मूलकथा का भाव समूचे कुमाऊँ क्षेत्र में लगभग एक समान दिखाई देता है।

7.3.3 कुमाउनी लोकगाथाओं की विशेषताएँ

कुमाउनी लोकगाथाएँ यहाँ की पैराणिक संस्कृति की संवाहक रही हैं। इन लोकगाथाओं के निर्माण के पीछे इतिहासपरक घटनाओं की विशेष भूमिका रही है। लोकमानस की भाव भूमि पर प्रचलित इन गाथाओं में आप प्रचीन काल की घटनाओं तथा चरित्रों का उल्लेख पाएँगे। कुमाऊँ क्षेत्र की विशेष पर्वतीय भौगोलिक संरचना, सभ्यता , संस्कृति तथा लोकजीवन की अनुभूति के लयात्मक संस्पर्श को हम इन गाथाओं के माध्यम से आत्मसात करते हैं। भाषा बोली के आधार पर विभिन्न क्षेत्रों में इन गाथाओं की लय विलग हो सकती है, किन्तु भावात्मक सुन्दरता प्रायः एक सी है। कुमाउनी लोकगाथाएँ स्वयं में आख्यान का वैशिष्ट्य प्रकट करती हैं। आप कुमाउनी लोकगाथाओं की विशेषताओं को निम्नलिखित शीर्षकों के द्वारा समझ सकेंगे -

(1) **वाचिक परंपरा के मूल स्त्रोत:** - कुमाउनी लोकगाथाएँ मौखिक परंपरा के आधारभूत स्त्रोत हैं। इतिहास की दीर्घ कालीन परंपराओं से ये अनुभवजन्य ज्ञान की संचित राशि के रूप में व्याख्यायित होते रहे हैं। आप देख सकते हैं कि कई अनपढ़ गाथा गायक जो अपना नाम तक लिखना नहीं जानते, गाथाओं के मौखिक गायन में पारंगत होते हैं। ये गांथाकार कई दिन तथा रातों तक निरंतर बिना किसी बाधा के गाथा का वाचन करते हैं। उसे लयबद्ध ढ़ग से गाते हैं। वाचिक परंपरा

में गाथाकारों की अभिव्यक्ति अनूठी होती है। स्वरों के आरोही अवरोही तथा हाव भाव को गाथाकार बड़ी रोचकता के साथ श्रोताओं के समक्ष रखते हैं। इससे प्रतीत होता है कि मौखिक परंपरा में गाथा एक मौलिक अभिव्यक्ति है, जो बिना किसी उद्देश्य तथा तर्क के अनुभूत ज्ञान की रूपरेखा को हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है।

(2) **सुदीर्घ कथानक की प्रधानता**:- कुमाउनी लोकगाथाओं के कथानक इतने लम्बे होते हैं कि एक गाथा एक पुस्तक के रूप में लिखी जा सकती है। मौखिक परंपरा में प्रचलित इन गाथाओं के मूल पाठ के लिए कोई निश्चित प्रतिबद्धता नहीं है। जीवन जीने की कला के रूप में बुजुर्गों द्वारा लम्बे कथानक वाली गाथाएँ गायी जाती रही है। राजुला मालूसाही की गाथा एक सुदीर्घ कथानक वाली गाथा है।इसमें गद्य भाग को भी गाया जाता है तथा पद्य भाग को भी । इन गाथाओं में संवादमूलकता बनी रहती है। नाटकीय अंदाज में अलग अलग चरित्रों द्वारा उच्चरित संवादों को शामिल करने के कारण इन गाथाओं की अन्तर्वस्तु सुदीर्घ हो गई है। कथानक का बड़ा या छोटा होना गाथाओं के लिए कोई प्रभावकारी नहीं है। सार्थक संवादों के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रसंग भी गाथाओं में अकारण जुड़े प्रतीत होते हैं। मूल एवं प्रामाणिक पाठ के अभाव में ही गाथाओं का कथानक विस्तृत बन पड़ा है। आप समझ सकते हैं कि रमौल, मालूसाही तथा जागर आदि सुदीर्घ गाथाओं के गायन में गाथाकार कितना अधिक समय लेते हैं। इनके गायन में लगे समय के सापेक्ष ध्वन्यालेखन में और अधिक समय खर्च होता है।

(3) **रचयिता अथवा सृजनकर्ता का अज्ञात होना:** - कुमाउनी लोकसाहित्य की वाचिक परंपरा में परंपरित कई विधाओं के रचनाकारों का कुछ पता नहीं है। इन गाथाओं के मूल जन्मदाता कौन थे ? किस व्यक्ति ने इन गाथाओं को सर्वप्रथम गाना शुरू किया ? इस संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता । कुमाउनी मुहावरे तथा कहावतों के संबंध में भी यही बात सामने आती है कि इन सूक्तियों एवं कहावतों के निर्माणकर्ता या रचयिता कौन थे ? लोकगाथाओं का जनमानस में प्रादुर्भाव किस प्रकार हुआ? इस संबंध में भी ठीक ठीक कुछ नहीं कहा जा सकता। ये लोकगाथाएँ अपनी मौलिकता के साथ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती आई हैं।

डॉ. उर्वादत्त उपाध्याय ने हडसन के मत का संदर्भ ग्रहण करते हुए अलंकृत काव्य तथा संवर्धित काव्य के बारे में बताते हुए लिखा है कि लोकगाथा सवंर्धित काव्य का रूप है। मूल में जिसका कोई कवि रहा होगा, किन्तु विकास के साथ साथ अनेक लोक कवि एवं गायकों द्वारा उसकी वस्तु में वृद्धि की गई होगी। इसी कारण उसमें परिवर्तन भी स्वाभाविक रूप में आ गया अतः आप समझ पायेंगे कि रचनाकारों के अज्ञात होने के बावजूद इतिहास काल से अद्यतन इन गाथाओं का स्वरूप जीवन्त है।

(4) **नैतिक प्रवचनों एवं उपदेशात्मकता का अभाव:-** कुमाउनी लोकगाथाएँ किसी कथाख्यान का आलंबन लेकर सीधे प्रवाहित होती हैं। इनमें नैतिकता तथा जीवन के लिए जाने वाले उपदेशों का नितान्त अभाव है। इससे प्रतीत होता है कि ये गाथाएँ जब निर्मित हुई होंगी, तब के समाज में कोई ऐसी विभीषिका नहीं होगी ,जो गाथाओं को प्रभावित कर सके । गाथाएँ अपने कथाभाव को लय के साथ अभिव्यक्त करती हुई आगे बढ़ती हैं। इसमें जीवन जीने के लिए जाने वाले उपदेशों का सर्वथा अभाव है।

(5.) **संगीत तथा नृत्य का अप्रतिम साहचर्यः-** कुमाउनी लोकगाथाओं में संगीत और नृत्य का अनूठा साहचर्य है। जागर गाथा को वाद्य यंत्रों के माध्यम से गाया जाता है, घर में लगने वाली जागर में हुड़का तथा कांस्य की थाली को बजाने का विधान है। जबकि मंदिरों या धूनी की जागर बैसी इत्यादि में ढोल दमाऊँ बजाकर देवताओं का आह्वान किया जाता है। कुमाऊँ में कृषि कार्यो को द्रुत गति से सम्पन्न कराने के लिए हुड़कीबौल का प्रचलन है। इसमें भी बौल गायक हुड़के की थाप पर किसी प्राचीन गाथा का गायन करता है। इन गाथाओं में छंद की महत्ता उतनी नहीं समझी जाती। छंद विधान की कट्टरता को दरकिनार करते हुए लय और सुरताल पर अधिक ध्यान दिया जाता है।

(6) **अतिमानवीय तथा अतिप्राकृतिक तत्वों से युक्त कथानक रुढ़ियाँ-** जीवन के यथार्थमय दृष्टिकोण को प्रतिपादित करने के बाद भी इन गाथाओं में अतिमानवीय प्रकृति का समावेश हुआ है। डा. गोविन्द चातक के अनुसार देव गाथाओं में इसका समावेश एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, किंतु अन्य वर्गो की गाथाओं में उसका उपयोग एक बहुत बड़ी सीमा तक हुआ है। इसका कारण समाज में समय-समय पर प्रचलित अंधविश्वासों, अनुष्ठानों, मनःस्थितियों, कथानक रूढ़ियों तथा लोकमानस की चिन्तन विधियों में निहित है। इस प्रकार अतिमानव तत्व उस आदिम सामाजिक और मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों की देन है, जिससे लोकमानस प्रीलौजिकल विवेकपूर्ण होता है। वह अपने चिन्तन में कार्य कारण क्रम का तारतम्य अपने ढंग से स्थापित करता है। दूसरे अर्थ में वह अपने नियम को प्रतिपादित करने के लिए अतिमानवीय तथा अतिप्राकृतिक शक्तियों का आश्रय लेता हैं।

(7) **स्थानीय तत्वों का समावेशः-** कुमाउनी लोकगाथाओं में स्थानीय तत्वों का प्रचुरता से समावेश हुआ है। राजुला मालूसाही की गाथा में भोटांतिक जन समुदाय की स्थानीय विशेषता दिखाई देती है। उत्तरार्ध में बैराठ द्वाराहाट, कत्यूर दानपुर, भोटदेश की झांकी दिखाई देती है। मादोसिंह मलेथा की गाथा में गढ़वाल के मलेथा नामक जगह का उल्लेख हुआ है। इनमें स्थान विशेष की परंपरा का बाहुल्य है। लोक जीवन की कला संस्कृति तथा स्थानीय रीतिरिवाजों, रहन-सहन आदि के साहचर्य से गाथाओं का रूप निखरा है। स्थान विशेष के लोगों के द्वारा किए जाने वाले पूजा, धार्मिक अनुष्ठान, रीतियों का वर्णन कई गाथाओं में देखा जा सकता है। स्थानीय देवी देवताओं का वर्णन जागर गाथा में स्पष्ट रूप से हम पा सकते हैं। प्रेम तथा प्रणय की गाथाओं में भी स्थानीय जनता के मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रतिफलन इन गाथाओं में हुआ है।

यहां उपर्युक्त विशेषताओं के आलोक में आप कह सकते हैं कि गाथाएं अपनी जमीन से जुड़ी हरेक प्राच्य आख्यान को समाविष्ट करती हैं समाज को दिशा निर्देश देने के पूर्वाग्रह को आप इन गाथाओं में नहीं पा सकेंगे, ये गाथाएं मानव सभ्यता के उस दौर में प्रस्फुटित हुई है जब लोकजीवन में कुछ रचने एवं गढ़ने का एक स्वच्छंद शौक विद्यमान था। इसीलिए कुमाउनी तथा गढ़वाली लोकगाथाओं में सूक्ष्य चिन्तन दृष्टि को छोड़ स्थूल मनोरंजक प्रवृत्ति स्पष्ट झलकती है। स्थानीय प्रकृति तथा वातावरण के अनुभूत स्वर लहरियों को गाथाकारों ने एक विशद् लयात्मक स्वरूप प्रदान किया, तब से ये गाथाएं अपने स्वतंत्र अस्तित्व के साथ अभिव्यक्त होती रही हैं।

बोध प्रश्न

क- सही विकल्प चुनिए

1. मालूसाही है-

I. लोकसंगीत
II. लोकगाथा
III. लोकवार्ता
IV. लोककथा

2. लोकगाथा को क्या कहा गया है?

I. लोककथा
II. लोकगीत
III. लोकवाद्य
IV. गद्य- पद्यात्मक काव्य

3. हुड़कीबौल का संबंध है-

I. कृषि गाथा से
II. जागर गाथा से
III. प्रणय गाथा से
IV. लोकवार्ता से

ख. निम्नलिखित में सत्य या असत्य छॉटिए-

1- लोकगाथा कुमाऊँ तथा गढ़वाल दोनों मंडलों में प्रचलित है। (सत्य/असत्य)

2- जागर में केवल हुड़का नामक वाद्य यंत्र बजाया जाता है। (सत्य/असत्य)

3- लोकगाथा के रचयिता अज्ञात हैं। (सत्य/असत्य)

4-लोकगाथा में स्थानीय तत्वों का सर्वथा अभाव है। (सत्य/असत्य)

ग- लोकगाथा से क्या तात्पर्य है। लोकगाथा के स्वरूप को समझाइए।

घ- लोकगाथाओं में इतिहास कालीन घटनाओं तथा चरित्रों का उल्लेख किस प्रकार हुआ है,समझाइए।

7.4 कुमाउनी लोकगाथाओं का भावपक्षीय वैशिष्ट्य

कुमाउनी लोक परंपरा के द्वारा ही यहां की विविध लोक साहित्यिक विधाओं का जन्म हुआ है। प्रत्येक लोकजीवन की अपनी कुछ अलग भावपक्षीय विशेषताएं होती हैं। इन विशेषताओं का प्रभाव उस काल खंड में रचे गए लोकसाहित्य पर भी पड़ता है। डॉ.उर्वादत्त उपाध्याय ने लोकगाथाओं के भावपक्ष संबंधी विशेषताओं पर लिखा है- 'यद्यपि ये विशेषताएं एकान्तिक रूप से केवल कुमाउनी साहित्य की विशेषताएं ही नहीं की जा सकती हैं। अर्थात यह आवश्यक नहीं है कि

ये विशेषताएं केवल कुमाऊँ के गाथा साहित्य के अतिरिक्त विश्व साहित्य में सुलभ ही न हो।' यहां के गाथाओं की विशेषताओं में भावपक्ष की प्रबलता है, जिन्हें अधोलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत समझा जा सकता है-

(1) कुमाउनी गाथाकार कतिपय स्थानों पर भूतकाल की जगह भविष्यत काल का वर्णन करता है-

तेरी होली राणी

गाउली सौकेली

सुनपति सौका हो लौ

बड़ो अन्नी धन्नी

सुनपति शौका का

सनतान न होती

अर्थात् तेरी रानी गॉउली सौकेली होगी। सुनपति भोटिया बड़ा अन्नवान तथा धनवान होगा। सुनपति सौक की कोई संतान नहीं है।

(2) तुकबंदी के लिए प्रथम पंक्ति को निरर्थक रूप में जोड़ने का लक्षण प्रस्तुत है-

भरती भरली

दैण नौर दाथुली

वो नौर धरली

सांटी में को सूलो

झिट घड़ी जागी जावो

ऊंमी पकै लूलो (गंगनाथ गाथा)

अर्थात भरती भरेगी। दाहिने कंधे की दराती बांये पर रखेगी, सांटी में का सूल। तनिक प्रतीक्षा करो,मैं ऊंमी पकाकर लाऊंगी।

(3) साहित्य जगत में कवियों द्वारा नायिका के रूप में सौन्दर्य का वर्णन 'दिने दिने सा ववृधे शुक्ल पक्षे यथा शशी' द्वारा किया जाता है। किन्तु राजुला मालूसाही गाथा में राजुला के शैशवकाल से यौवन तक का वर्णन गाथाकार ने अपने निजी ज्ञान के आधार पर किया है-

द्वियै दिन में हो छोरी चार दिन जसी

नावान बखत छोरी, छे महैणा कसी

म्हैणन में हई गैछ बरसन कसी

चैत की कैरूवा कसी वणण बगै छ

भदौ की भंगाल कसी बड़ण बैगे छ

पूस की पालड. कसी ओ छोरी रजुली

राजन की मुई जनमी देवातों की वैरी

ओ छोरी रजुली ऐसी जनमी रै छ (मालूसाही द्वितीय श्रुति)

(दो ही दिन में वह छोकरी चार दिन के समान हो गई है। नामकरण के समय छः मास की हो गई, महीनों में ही वर्षो के समान वृद्धि पा गई, चैत्र मास के कैरूवा के समान बढ़ने लगी हैं भादौ की भंगाल जैसी उगती गई। पूस मास के पालक जैसी हे रजुली, राजाओं को तू मूल नक्षत्रों के समान खटक रही है। इसका सौन्दर्य राजाओं के लिए चुनौती बन गया है। इसका सामना देवतागण स्वर्गवासी होने के कारण नहीं कर सकते।)

आपने पढ़ा कि किस प्रकार भावपक्षीय सुंदरता को गाथाओं में वर्णित किया जा सकता है। जीवन के मूल भाव को नेपथ्य में रखते हुए गाथाएं अपनी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अनुसार चलती हैं।

7.4.1 कुमाउनी लोकगाथाओं में प्रकृति चित्रण

साहित्य की लगभग भावात्मक विधाओं में प्रकृति के नाना रूपों का चित्रण हुआ है। प्रकृति एक विराट विषय है । मनुष्य की प्रकृति कहने से भी यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि मानव मन की प्रकृति भी वाह्य प्रकृति की एक अनुकृति है। डॉ.उर्वादत्त उपाध्याय लिखते हैं-'जहां तक लोकगाथाओं में प्रकृति चित्रण का संबध है। वहां भी प्रकृति के नानारूपात्मक चित्रणों का अभाव नहीं कहा जा सकता है। यद्यपि ये गाथाएं घटना प्रधान हैं, तथा वर्णन प्रधान हैं ये खंडकाव्य, इनकी रचना प्रकृति चित्रण के लक्ष्य से नहीं हुई है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि इन गाथाओं में प्रकृति चित्रण का सर्वथा अभाव है। वायु में मिश्रित सुरभि को सूंघने तथा आंखों के आगे कुसुमित प्राकृतिक सुषमा से कौन मुख मोड़ सकता है कुमाऊँ का प्रदेश तो नियति नटी के विभिन्न वेशभूषाओं तथा अलंकरणों से सुसज्जित है तथा उसके नाना प्रकार के व्यापारों से मुखरित है।'

वैदिक कालीन अभिव्यक्ति से लेकर आज तक जितने भी लोक सम्मत विधाओं का निर्माण हुआ है। उनमें प्रकृति एक सार्थक आलंबन के रूप में वर्णित रही है। यहां हम कुछ लोकगाथाओं के अंशों में प्रकृति चित्रण का अध्ययन करेंगे।

मौलिक आलंबन के रूप में प्रकृति चित्रणः- राजुला मालूसाही गाथा में जब गंगा के गर्भ से राजुला का प्रादुर्भाव हुआ, तब तत्कालीन हिमालयी पर्वत प्रदेश की छटा निखर उठी। आप उस छटा की मनोरम झांकी प्रस्तुत अंश में देख सकते है-

हिमाल बादो फाटो री री री. पंचाचूली चांदी जस चमकी रौ

नन्दा देवी की घुडि.टी री री री और तली खिसकण लागी रै

गोरिगंगा पाणी बड़ौ री री री उज्यालो चमकीलो है रौ

(मालूसाही प्रथम श्रृति)

अर्थात हिमालय के बादल फट गए हैं और पंचाचूली चांदी के समान चमक रहा है। नंदादेवी के घूंघट को और नीचे खिसका रहा है। गौरी गंगा का पानी बढ़कर साफ और चमकीला हो गया है।

गाथाकार ने एक अन्य स्थान पर गंगा के तट का प्रातःकालीन चित्र उभारते हुए कहा है-

चार पहर रात अब, खतम है गई हो

गंगा का सुसाट नरैण आब बड़ि गयो हो

करकर ठंडी हवा ऊँछै सरसर जाड़ो लागो हो

(हरू सैम की गाथा)

अर्थ रात्रि के चार पहर बीत चुके हैं। हे नारायण गंगा के पानी की कलकल ध्वनि अब बढ़ गई है। करकर करती हुई हवा आकर ठंडे का आभास करा रही है अर्थात जाड़ा होने लगा है।

एक गाथा में छिपलाकोट जंगल की नैसर्गिक सुषमा के बारे में गाथाकार ने कहा है-

समुणी बीचा माजी, फल फूल बोट

बीस अमिर्त दाख दाड़िम आम पापली चौरा

कत्यूर शिलिंग कुन्जूफूलो और फूली प्योली

अर्थात सामने के बाग में फल और फूल के पेड़ है।

अमृत, विष दाख तथा दाड़िम के फल हैं। आम तथा पीपल के पेड़ों में चबूतरे का निर्माण हुआ है। कनेर शिलिंग कुञ्ज तथा प्योली के फूल खिले हैं।

प्रकृति का उद्दीपक रूपः- प्रकृति के उद्दीपक रूपों का वर्णन भी गाथाओं में हुआ हैं। नायक नायिका की मन स्थिति के अनुसार वेदना में उसे प्रकृति असुंदर लगती है तथा हर्षित क्षणों में वही प्रकृति नायक या नायिका के लिए वरदान सी साबित हो जाती है-

हिमाल की हवा क्या मीठी लगी रे

के धूरा हो राजू तेरि दीठि लागी रे

राजू का शोर या हवा ले मीलि रे

शौक्यूड़ा बगीचा मेरि राजू खिलि रे।

अर्थात हिमालय की हवा में कितनी मीठी सुवास है। राजुला तेरी दृष्टि किस दिशा में लग रही हैं। क्या तू मेरे आगमन को नहीं देख रही हैं। राजुला के श्वास में यह घुली है इसी के द्वारा मिठास का अनुभव होता है। भोट प्रदेश में बगीचे में मेरी रजुली खिली है।'

विरहिणी राजुला की विरह व्यथा में स्थानीय पक्षी फाख्ता (घुघुत) का वर्णन आया है। राजुली के विरहाकुल मनोदशा पर उसे घुघुत की बोली भी असहनीय कष्ट दे रही है।

ए नी बासो घुघुती को रूमझूम

मेरी ईज सुणली को रूमझूम

काटी खांछ भागी गाड़ को सुसाट

छेड़ी खांछे भागी तेरी वाणी

(मालूसाही द्वितीय श्रृति)

(हे घुघुत! तुम घुर्र घुर्र कर आवाज मत निकालो कही तेरी मर्मस्पशी आवाज मेरी मॉ सुन लेगी हे भाग्यवान पक्षी! नदी के बहने की ध्वनि को सुनकर मुझे बहुत कष्ट होता है। तेरी दुःखभरी वाणी मुझे काट खाने को आती है।)

अलंकारों के रूप में प्रकृति चित्रण- कुमाउनी लोकगाथाओं में प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत विधान अलंकारों के माध्यम से प्रकट होता है। कहीं उपमाएं दी जाती है तो कही रूपक अतिश्योक्ति के रूप में वस्तुस्थिति का चित्रण किया जाता है। राजुला मालूसाही गाथा में अलंकृत शैली का प्रयोग द्रष्टव्य है-

कांस जसी बूड़ी गंगा रीरि रीरि कफुवा जसी फूली रै

कंठकारी जसी गंगा री री, सब दुःख भूली गै

(श्वेत जलधार वाली गंगा कफुवे की जैसी फूली है

ऐसा लगता है कि उसके गले से अनेक ग्रंथियां फूटकर दुखों को भुला रहे हैं।

इन गाथाओं में गाथाकार ने आशीर्वाद लेने के अर्थ में भी अलंकारों का प्रयोग किया है

यथा- दवा जसी जड़ी पाती जसी पीली

बांसा जसी घाड़ी जुग जुग रौओ

(अर्थात दूब की जैसी जड़ पत्तियों जैसी वृद्धि तथा बांस के झुरमुट जैसा सघन विस्तार तुम्हारे जीवन में हो, यही कामना की जाती है)

प्रकृति के उपादानों का वर्णनः- लोकगाथाओं में प्रकृति के नाना रूपों का वर्णन हुआ है। ध्यान से देखा जाए तो समग्र प्रकृति ही गाथाओं के मूल में अवस्थित है। नदी,नाले पशु पक्षी, पेड़ पौधें किसी न किसी उपादान के रूप में इन गाथाओं में वर्णित हैं। राजुला मालूसाही गाथा में जब भोट प्रदेश से राजुली बैराठ की तरफ प्रस्थान करती है, तब मार्ग में पड़ने वाली सदानीरा नदियों से वह संवाद करती हैं। सरयू के पावन संगम बागेश्वर में पहुंचकर वह बागनाथ जी का आशीर्वाद ग्रहण करती है और मार्ग में पड़ने वाली अन्य सहायक नदियों से भी अपने अमर सुहाग का वरदान मांगती है। चूंकि लोकगाथाओं का प्रणयन लोकमानस की भावभूमि पर हुआ है। अतः इन गाथाओं में मनुष्य की प्रकृति पौराणिक सन्दर्भों को रूपायित करती प्रतीत होती है । नागगाथा का उदाहरण दर्शनीय है-

अधराती हई रैछ, अन्यारी रात छ

अन्यारी जमुना को पाणी, अन्यारी छ ताल

(अर्थात आधी रात का समय है घुप्प अंधेरा है, यमुना का पानी भी अंधियाला या काला है इसी कारण ताल भी अंधेरे से घिरा है।)

आप देख सकते है कि कुमाऊँ में बुरांश प्योली आदि के पुष्पों को सुंदरता के उपादानों के रूप में गाथाकारों ने प्रस्तुत किया है।

कतिपय गाथाओं में आप पायेंगे कि कफुवा न्यौली, घुघुता शेर आदि वन्य पशु पक्षियों को भी आलंबन के रूप में ग्रहण किया गया है। प्रकृति के रूपों को गाथाकार ने सरस ढंग से प्रस्तुत किया है इससे कुमाऊँ प्रदेश की सुरम्य प्राकृतिक सुदंरता का बोध आसानी से हो जाता है।

7.4.2. कुमाउनी लोकगाथाओं में निहित स्थानीय तत्व

स्थानीय तत्व को अंग्रेजी भाषा में local colour कहा जाता है। स्थान विशेष की विशेषता के कारण लोकसाहित्य की प्रत्येक विधा प्रभावशाली एवं रोचक होती है। किसी भी सर्पक का अपना एक लोक होता है। वह उस निजी लोक का निर्माता भी स्वयं होता है। लोक की प्रत्येक क्रिया अथवा प्रतिक्रिया सर्पक को प्रभावित करती है। इस लोकरंजक सृजन में कवि अपनी अनुभूति को शब्द देते समय स्थान विशेष की वस्तुओं भावनाओं तथा परम्पराओं का बहुत ध्यान रखता है। यदि वह ध्यान न भी रखे तो भी उसकी काव्य में स्वतः समाविष्ट हो जाती है।

कुमाऊँ की लोकगाथाओं में आप समझ सकेंगे कि स्थान विशेष के लोक पारंपरिक आचार व्यवहार प्रकृतिपरक चीजें तथा प्रतिमानों की समिष्ट बड़ी सुरूचि के साथ गाथाकार ने गढ़ी हैं। डॉ. उर्वादत्त उपाध्याय के शब्दों में -अतः कुमाऊँ प्रदेश के लोकगाथाओं में यहाँ का पूरा लोकजीवन अपनी स्थानीय संस्कृति सहित साकार तथा सजीव हो उठा है। कवि ने अपनी स्थानीय प्रकृति पशु ,पक्षी तथा लोकजीवन के दैनिक व्यापारों का पूरा चित्रण किया है। यद्यपि

स्थानीय तत्व का यह रंग गाथाओं में सर्वत्र बिखरा है। कोई भी गाथा पढ़ी या सुनी जाए स्वतः ही उसमें यहाँ का स्थानीय रंग अपनी आभा लिए निखरने लगेगा।

पशु पक्षियों के वर्णन तथा उनकी गाथाओं से संबंधता को देखने से पता चलता है कि कुमाऊँ के धुर जंगलों में कोयल कफु का बोलना, घुघुत (फाख्ते) की घुर्र-घुर्र तथा न्यौली की मीठी सुरीली तान गाथाओं का प्रमुख आधार बने हैं।हिमालय की पर्वत श्रृंखलाओं को भी गाथाकारों ने गाया के माध्यम से वर्णित किया है। नंदा देवी, पंचाचूली, छिपलाकेदार, त्रिशूली तथा अनेक ग्लेशियरों का वर्णन भी यत्र-तत्र दिखाई देता है। प्राकृतिक सदानीरा सरिताओं में प्रमुख काली गंगा, गौरी गंगा, सरयू रामगंगा के माध्यम से कुमाऊँ क्षेत्र की पतित पावनी नायिकाओं के चरित्र की उदात प्रभा का उद्घाटन किया गया हैं कुमाऊँ के प्रसिद्ध शिवमंदिरों जागेश्वर धाम का वर्णन भी गाथा में इस प्रकार हुआ है-

जागेश्वर धुरा बुरूशि फुली रै

मौलि रैई बांजा फुली रै छ प्योली

(अर्थात जागेश्वर के जंगलों में बुरांश को पुष्प खिले हैं, बांज के वृक्ष ने श्याम सी छवि धारण की है तथा पीले-पीले प्यूंली के फूल खिल रहे है)

कहीं बुरूश नाम प्रसिद्ध पुष्प का वर्णन है, तो कही चैत्र मास में फूलने वाली पीलाभ प्यूंली से नायिका के रूप सौन्दर्य को अभिव्यक्त किया जाता है। कहीं स्थानीय ताल पोखरों का वर्णन भी गाथाओं में आया है। कुमाऊँ में ग्रामीण क्षेत्रों में कम पानी वाले क्षेत्रों में तालाब से बनाए जाते हैं। गर्मियों में इन तालों में भैसों को स्नान कराया जाता है। इन पोखरों को भैसीखाल या भैंसी पोखर के नाम से भी जाना जाता है। स्थानों के पौराणिक नामों का समावेश भी गाथाओं में हुआ है। भोटांतिक क्षेत्र को भोट बागेश्वर का क्षेत्र दानपुर तथा कत्यूर तथा द्वाराहाट का क्षेत्र बैराठ के रूप में गाथाकार ने वर्णित किया है। इसके अतिरिक्त जौलजीवी मेला, उत्तरायणी मेला, बग्वाल का वर्णन भी मिलता है। स्थानीय वस्त्राभूषण जिनमें बुलांकी गले की जंजीर, कानों के झुमके, पैरों के झांवर, तथा झर हाथों की धागुली, नाक की नथुली दस पाट का घाघरा, मखमली अंगिया, धोती प्रमुख हैं, का भी समावेश लगभग स्थानीय गाथाओं में सभी में हुआ है। इस प्रकार आप समझ जाएंगे कि कुमाऊँ के स्थानीय मेले सांस्कृतिक तथा भौगोलिक पंरपरा के सभी सूत्र गाथाओं के विशाल कथानक के आधार स्तंभ हैं।

बोधात्मक प्रश्न

क- बहुविकल्पीय प्रश्न

सही उत्तर का चयन कीजिए

1- लोकगाथाओं के रचयिता हैं-

I. ज्ञात
II. अज्ञात

III. एक दर्जन
IV. दस

2- कुमाउनी लोकगाथा में अभाव है-

I. रचयिता का
II. मूल पाठ का
III. उपदेशों का
IV. उपर्युक्त सभी का

3- कुमाउंनी लोकगाथा के भावपक्ष में प्रमुख कौन सा है?

I. प्रकृति वर्णन तथा स्थानीय तत्व
II. गाथाकार का व्यक्तित्व
III. अलंकार
IV. कोई नहीं

ख- अतिलघुउत्तरीय प्रश्न

1-कुमाउनी लोकगाथा में वर्णित किसी एक स्थानीय पक्षी का नाम बताइए ?

2- मालूसाही की नायिका/ प्रेमिका का नाम बताइए ?

3- नाक में पहने जाने वाले भोट प्रदेश के आभूषण का नाम क्या है?

4- कत्यूर क्षेत्र किस जनपद के अन्तर्गत आता है?

7.5 कुमाउनी लोकगाथाओं का वर्गीकरण

कुमाऊँ में प्रचलित लोकगाथाओं के अनेक रूप हमें प्राप्त होते हैं। इन गाथाओं में प्राचीन काल के विविध आख्यान निहित है। इन गाथाओं में आधुनिक काल की किसी कथा आख्यान को सम्मिलित नहीं किया गया है। कुछ गाथाओं की कथा बहुत विस्तृत हैं, तो कुछ गाथाएं संक्षिप्त भी है। यहां आप संक्षेप में गाथाओं के वर्गीकरण को समझ सकेंगे।

(1) परंपरागत गाथाएं

(2) पौराणिक गाथाएं

(3) प्रेमपरक गाथाएं

(4) धार्मिक गाथाएं

(5) स्थानीय एवं वैदिक देवी देवताओं से संबंधित गाथाएं

(6) वीर गाथाएं

परंपरागत गाथाओं में मालूसाही तथा रमौल की गाथाएं प्रसिद्ध है। मालूसाही की विस्तृत गाथा में राजुला मालूसाही का जातीय प्रेमाख्यान प्रदर्शित होता है। इसमें मध्यकालीन कुमाउनी संस्कृति के दर्शन होते हैं। कुछ विद्वान मालूसाही की गाथा को जातीय महाकाव्य के रूप में भी स्वीकारते है। कुमाऊँ के सीमान्त क्षेत्र जोहार से लेकर नैनीताल के चित्रशिला घाट तक का वर्णन इस गाथा में हुआ है।

दूसरी परंपरागत लोकगाथा रमौल के नाम से जानी जाती है। कुमाऊँ तथा गढ़वाल मंडल में प्रचलित इस गाथा में आप महाभारत कालीन चरित्रों एवं घटनाओं का वर्णन समझ सकते हैं।

पौराणिक गाथाओं में पुराण कालीन अनेक गाथाओं का सम्मिश्रण मिलता है। महाभारत काल के कृष्ण अर्जुन संवाद, कौरव पाण्डवों के मध्य हुए युद्ध के कारण तथा उनकी तत्कालीन प्रवृत्तियों को इसमें दर्शाया गया है। रामायण काल की रामचन्द्र जी एवं कृष्ण जी के अवतार संबंधी कथा का वर्णन भी प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त शिव पार्वती संवाद, कृष्ण जन्म की घटना, चौबीस अवतार तथा नागवंश की विशेषताओं को पौराणिक गाथाओं के रूप में जाना जाता है।राजुला मालूसाही की गाथा विशुद्ध रूप से प्रेमपरक गाथा है। जातिगत वैभिन्य के बावजूद भी दोनों के मिलन की एक अलौकिक कथा हमारे समक्ष आती है। धार्मिक गाथाओं के अन्तर्गत वे गाथाएं आती हैं ,जिनके मूल में विशेष धार्मिक अनुष्ठान, पूजा पाठ की क्रियाएं सम्मिलित हैं। कुमाऊँ में जागर गाथा को धार्मिक गाथा कहा जाता है। यद्यपि कुछ विद्वानों का इसके संबंध में अलग मत हैं। कुछ लोग जागर में महाभारत या रामायण काल की घटना की उपस्थिति के कारण इसे पौराणिक गाथा की कोटि में रखते हैं। किन्तु मूलतः पहाड़ की पूजा अनुष्ठान की विशेष छवि जागर गाथा में दिखाई देने के कारण इसे धार्मिक गाथा कहना उचित प्रतीत होता है।स्थानीय देवी देवताओं से संबंधित गाथाओं में नंदा का जागर, नंदा का नैनौल, सिदुवा बिदुवा की कथा, अजुवा बफौल आदि की गाथा सम्मिलित है।वीर गाथाओं में चंद, कत्यूरी वंशजों की गाथाएं गायी जाती हैं। राजा बिरमा की कत्यूरी गाथा भी एक प्रभावशाली वीर गाथा है। चंद राजाओं, उदैचन्द, रतन चंद, विक्रमचंद की गाथाओं में तत्कालीन वीरतापूर्ण आख्यान समाविष्ट हैं।

बोध प्रश्न

क- सही विकल्प छॉटिए

1. प्रेमपरक आख्यान किस गाथा में मिलते है-

I. जागर गाथा
II. धार्मिक गाथा
III. मालूसाही गाथा
IV. रमौल गाथा

2. नंदा का नैनौल है-

I. देवी देवताओं संबंधी गाथा

II. प्रेम गाथा
III. वीर गाथा
IV. परंपरागत गाथा

3. रमौल है-

I. परंपरागत गाथा
II. वीर गाथा
III. धार्मिक गाथा
IV. प्रेमाख्यान

ख - निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए

1पौराणिक गाथाओं का वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए

2 धार्मिक गाथाओं से क्या तात्पर्य है?

3 वीरगाथाओं की विशेषताएं बताइए।

7.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप—

कुमाउनी लोकगाथाओं का अर्थ एवं स्वरूप समझ चुकें होंगे

कुमाउनी लोकगाथाओं के ऐतिहासिक स्वरूप को जान गए होंगे

लोकगाथाओं की भाव भावपक्षीय सुंदरता का अध्ययन कर चुके होंगे।

लोकगाथाओं के वर्गीकरण से विभिन्न प्रकार की

प्रचलित गाथाओं के बारे में ज्ञात प्राप्त कर चुके होंगे।

7.7 शब्दावली

उपादेय	-	उपयोगी
भड़ौ	-	भड़ौ अर्थात भटों एक प्रकार की वीर गाथा
जागर	-	जागरण कुमाऊँ की दीर्घ गाथा
नैनौल	-	नंदा देवी का जागरण गायन

विभीषिका - अशांति, अराजकता

भोट प्रदेश - भोटिया जनजाति का क्षेत्र जोहार, मुनस्यार

आख्यान - प्राचीन काल का भाव या सूत्र

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

इकाई 7.3 के उत्तर

क- 1- लोकगाथा

2- गद्य-पद्यात्मक काव्य

3- कृषि गाथा से

ख-

1-सत्य

2. असत्य

3. सत्य

4. असत्य

7.4 के उत्तर

क- 1- अज्ञात

2- रचयिता का

3- प्रकृति वर्णन तथा स्थानीय तत्त्व

ख- 1- घुघुत

2- राजुली

3- बुलॉकी

4- बागेश्वर

7.5 के उत्तर

क- 1- मालूसाही गाथा

2- देवी देवताओं संबंधी गाथा

3 – परम्परागत गाथा

7.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1- उपाध्याय डा. उर्वादत्त कुमाऊँ की लोकगाथाओं का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन , पृ0 34 व 35

2. पूर्वोक्त, पृ0 67

3. पूर्वोक्त पृ0 63-64

4. पूर्वोक्त पृ0 391-394

5- पूर्वोक्त पृ0- 423-431

6. पाण्डे, त्रिलोचन, कुमाउनी भाषा और उसका साहित्य पृ0 229

7. पूर्वोक्त पृ0 234

8. पूर्वोक्त, कुमाऊँ का लोक साहित्य पृ0 160-161

9- पोखरिया, देवसिंह, लोकसंस्कृति के विविध आयाम पृ0 57-58

7.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. कुमाऊँ की लोकगाथाओं का साहित्यिक और सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ उर्वादत्त उपाध्याय, प्रकाश बुक डिपो बरेली

2. कुमाउनी भाषा और उसका साहित्य, डा.त्रिलोचन पाण्डे,उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

3. लोकसंस्कृति के विविध आयाम, डॉ.देवसिंह पोखरिया, श्री अल्मोड़ा बुक डिपो अल्मोड़ा

4. कुमाउनी भाषा और संस्कृति, डॉ केशबदत्त रूवाली

5. भारतीय लोकसंस्कृति का संदर्भ, मध्य हिमालय डॉ गोविन्द चातक, तक्षशिला प्रकाशन दरियागंज दिल्ली।

7.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. कुमाउनी लोकगाथओं के स्वरूप एवं इतिहास की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

2. लोकगाथाओं की विशेषताएं बताते हुए उनका वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।

3. जागर गाथा क्या है, जागर गाथाओं में गाए जाने वाली लोकगाथाओं का वर्णन कीजिए।

इकाई 8 कुमाउनी लोकसाहित्य: अन्य प्रवृत्तियाँ

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 कुमाउनी लोकसाहित्य की अन्य प्रवृत्तियाँ
    8.3.1 कुमाउनी मुहावरे एवं कहावतें
    8.3.2 कुमाउनी पहेलियाँ
    8.3.3 अन्य रचनाएँ
8.4 कुमाउनी प्रकीर्ण विधाओं की विशेषताएँ तथा महत्त्व
8.5 सारांश
8.6 पारिभाषिक शब्दावली
8.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
8.9 सहायक ग्रंथ सूची
8.10 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

पुराकाल से मानवीय अभिव्यक्ति के दो रूप हमें प्राप्त होते रहे हैं। एक वाचिक या मौखिक परंपरा के रूप में प्रचलित है तथा दूसरी विधा लिखित अथवा परिनिष्ठित साहित्य के रूप में जानी जाती है। हमने पूर्ववर्ती इकाइयों में इन दोनों रूपों का अध्ययन किया है। कुमाउनी लोकसाहित्य की प्रकीर्ण विधाओं का अध्ययन इस इकाई के अंतर्गत किया जाएगा। कुमाऊँ के समाज में मुहावरे ,कहावते तथा पहेलियाँ आदि काल से मौखिक रूप में प्रचलित रही हैं। इनके निर्माताओं के बारे में अद्यतम कुछ नहीं कहा जा सकता। युगों से संचित ज्ञानराशि के रूप में ये प्रकीर्ण कुमाउनी विधाएँ लोकजीवन की रोचक धरोहर के रूप में विख्यात हैं।

प्रस्तुत इकाई के प्रारंभ में कुमाउनी लोकसाहित्य की अन्य प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालते हुए उनके स्वरूप को अभिव्यक्त किया गया है। कुमाऊँ में प्रचलित लोक कहावतों ,मुहावरों,पहेलियों आदि को पारिभाषित करते हुए उनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है। इकाई के उत्तरार्ध में कुमाउनी प्रकीर्ण विधाओं की विशेषताओं तथा महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। कुल मिलाकर प्रस्तुत इकाई लोकसाहित्य की विविध विधाओं का समाहार करती हुई अपने सामाजिक महत्त्व को प्रदर्शित करती है।

8.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप -

कुमाउनी मुहावरों तथा कहावतों के आशय को स्पष्ट रूप से समझ सकेंगे

कुमाउनी कहावतों एवं मुहावरों में निहित लोक जीवन दर्शन का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे

कुमाउनी पहेलियों तथा यहाँ के लोगों की बुद्धि चातुर्य पर प्रकाश डाल सकेंगे

प्रकीर्ण विधाओं की विशेषताओं तथा महत्त्व को समझ सकेंगे।

8.3 कुमाउनी लोकसाहित्य की अन्य प्रवृत्तियाँ

कुमाऊँ में लोकगीत , लोककथा तथा लोकगाथा के अतिरिक्त अन्य लोक विधाएँ भी प्रचलित हैं। इनमें मुहावरे, कहावतें तथा पहेलियाँ प्रमुख हैं। ये सभी विधाएँ इतिहास काल के दीर्घ प्रवाह में अपना स्थान निर्धारित करती आई हैं। मुहावरे तथा कहावतों एवं पहेलियों की रचना किस व्यक्ति द्वारा की गई ? किन परिस्थितियोंमें की गई,? इस सम्बन्ध में आज तक ठीक-ठीक कुछ नहीं कहा जा सकता। इतना अवश्य है कि ये विविध विधाएं तत्कालीन परिस्थितियों से लेकर आज तक हमारे समाज में पूरी तरह से जीवंत हैं। इन विधाओं को सूत्रकथन के रूप में जाना जाता है। लोकमानस की अभिव्यक्ति प्रायः मौखिक परंपरा द्वारा संचालित रही है। लोकजीवन से सम्बद्ध कई घटनाएं तथा विचार प्रायः मौखिक रूप में ही

अभिव्यक्त होते हैं। कुमाउनी मुहावरें तथा कहावतों को सूत्रकथन के रूप में समाज में बहुत प्रसिद्धि मिली है। मानव की सभ्यता व संस्कृति के अनेक तत्वों पर आधारित इन प्रकीर्ण विधाओं में संक्षिप्तता सारगर्भितता तथा चुटीलापन है। इनकी मूल विशेषता इनकी लोकप्रियता है। इसी कारण ये कहावतें मुहावरें आदि जनमानस की जिह्वा पर जीवित रहते हैं।कहावतों को विश्व नीति साहित्य का एक प्रमुख अंग माना जाता है। संस्कृत के प्राचीन ग्रंथों में कहावतों तथा मुहावरों के व्यापक प्रयोग हुए हैं।

भारतवर्ष ही नहीं, अपितु संसार के कई अन्य देशों में भी इन प्रकीर्ण विधाओं का प्रचलन अपनी अपनी भाषाओं में है। हमारे देश में मुहावरे तथा कहातवें की पंरपरा वैदिक काल से चली आ रही है। कुमाउनी लोकसाहित्य के अन्तर्गत आने वाली लोक कथाएं तथा लोकगाथाएं इन कहावतों तथा पहेलियों से गूढ़ संबध रखती है। इन सूत्रात्मक व्यंग्यार्थ की प्रतीति कराने वाली विधाओं द्वारा लोकानुभूति की अभिव्यक्ति सहज रूप में जाया करती है। कुमाऊँ में इन कहावतों का प्रयोग लाक्षणिक अर्थ के प्रकटीकरण के लिए किया जाता है। पहेलियां भी कुमाउनी जनमानस की लोकरंजक मनोविज्ञान से संबंधित हैं। इनमें बुद्धितत्व को मापने की अद्भुत कला है। लोकमानस की तमाम जिज्ञासाओं में निहित वातावरण तथा मनोविज्ञान का पुट इन पहेलियों का निथार है। मनुष्य की लाक्षणिक त्वरित बुद्धि के आदान प्रदान तथा जिज्ञासा के समाधान हेतु ये विधा लम्बे समय से प्रचलित रही हैं।

कहा जा सकता है कि जीवन मूल्यों के धरातल पर बुद्धि की परख करने में तमाम प्रकीर्ण विधाएं यहां के लोकसाहित्य को समृद्ध किए हुए है। इनके समाज में निरंतर प्रचलित रहने से लोकसाहित्य की पंरपरा अक्षुण्ण रही है।

8.3.1 कुमाउनी मुहावरे एवं कहावतें

कुमाउनी समाज में आरंभिक काल से मुहावरों तथा लोकोक्तियों की अनूठी परंपरा रही है। वाचिक (मौखिक) परंपरा के रूप में मुहावरे तथा कहावतें अपने लाक्षणिक अर्थ तथा व्यंग्यार्थ की अनुभूति के लिए प्रसिद्ध है। यदि लोकसाहित्य के विवेचन को ध्यान से देखा जाए तो मुहावरे तथा कहावतें किसी भी लोक समाज दर्शन से जुड़ी होती हैं। इनमें संक्षिप्त रूप से गहन भावार्थ छिपा रहता है। व्यंग्यार्थ की प्रतीति कराने वाली इन विधाओं के निर्माताओं के विषय में सटीक तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता है। इतना अवश्य है कि ये लोक के गूढ़ आख्यान तथा उक्ति चातुर्य के प्रदर्शन में सिद्धहस्त हैं। यहां हम कुमाउनी मुहावरे तथा कहावतों के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कुछ व्यावहारिक मुहावरें तथा कहावतों का अर्थ स्पष्ट करेंगें।

कुमाउनी मुहावरेः- मुहावरा शब्द की व्युत्पत्ति अरबी भाषा से मानी जाती हैं । अरबी भाषा में मुहावरे का अर्थ आपसी बातचीत, वार्ता या अभ्यास होता है। अंग्रेजी में मुहावरे कोईडियम कहा जाता है।देव सिंह पोखरिया के शब्दों में- इस दृष्टि से किसी भाषा के लिखित या मौखिक रूप में प्रचलित वे सभी वाक्यांश मुहावरों के अन्तर्गत आते हैं। जिनके द्वारा किसी साधारण अर्थ का बोध विलक्षण और प्रभावशाली ढंग से लक्षणा और व्यंजना के द्वारा प्रकट होता है।

मुहावरों का प्रयोग दीर्घकाल से समाज में होता रहा है। यह केवल हिन्दी या कुमाउनी या हिन्दी में ही नहीं ,अपितु विश्व के सभी साहित्यों में अपने ढंग से व्यवहृत है। मुहावरा एक छोटा वाक्यांश होता है। मुहावरे तथा कहावत में मूल अंतर

यह है कि कहावत एक पूर्ण कथन या वाक्य होता है। तथा मुहावरा वाक्यांश। कहावत में कथात्मकता होती है। आप जान गए होंगे कि कथा के भाव को आत्मसात करने वाली विधा लोककथा कही जाती है। कहावत कथा के आख्यान को समेटे रखता है ,जबकि मुहावरा लाक्षणिक अर्थ का बोध कराकर समाज में अर्थ प्रतीति को बढ़ाता है।

कुमाऊँ क्षेत्र में प्रचलित मुहावरों की संख्या लगभग चार हजार से अधिक होगी। ये संख्या यहां के ग्रामीणों की बोलचाल की भाषा में अधिक प्रभावी है। आपसी वार्तालाप के लिए कुमाउनी में विशिष्ट मुहावरे का प्रचलन है। जैसे- 'क्वीड़ करण' का अर्थ होता है महिलाओं की गपशप ,किन्तु सामान्य गपशप के लिए 'फसक मारण' मुहावरा प्रचलन में है।

कुमाउनी मुहावरे विविध विषयों पर आधारित हैं। संक्षेप में मुहावरों का वर्गीकरण यहां प्रस्तुत किया जाता है-

(1) सामाजिक जीवन पर आधारित मुहावरे

(2) व्यक्तिगत शैली पर आधारित मुहावरे

(3) व्यवसाय संबंधी मुहावरे

(4) जाति विषयक मुहावरे

(5) प्राकृतिक उपादानों पर आधारित मुहावरे

(6) भाग्य तथा जीवनदर्शन संबंधी मुहावरे

(7) तंत्र-मंत्रतथा लोक विश्वास संबंधी मुहावरे

उपर्युक्त के आधार पर हम देखते हैं कि मनुष्य के शरीर के अंगों पर भी अधिकांश मुहावरों का प्रचलन समाज में होता आया है।

कुछ कुमाउनी मुहावरों को उनके हिन्दी अर्थ के साथ यहां प्रस्तुत किया जाता है-

(1) ख्वर कन्यूण- सिर खुजलाना

(2) बाग मारि बगम्बर में भैटण- बाघ मारकर बाघ की खाल पर बैठना।

(3) कन्यै कन्यै कोढ़ करण- खुजला खुजला कर कोढ़ करना

(4) स्यैणि मैंसोंक दिशाण अलग करण- पति पत्नी का बिस्तर अलग करना।

(5) आंख मारण- आंख मारना (इशारा करना)

(6) लकीरक फकीर हुण- लकीर का फकीर होना ।

(7) गाड़ बगूण -नदी में बहा देना।

(8) घुन टुटण- घुटने टूटना

(9) घुन च्यूनि एक लगूण- घुटना तथा मुंह साथ चिपकाना

(10) गल्दारी करण- बिचौलिया पन करना

(8 गोरख्योल हुण- गोरखों की भांति होना

(12) बिख झाणण- विष झाड़ना

(13) कांसक टुपर हुण- कांस की डलिया जैसा होना

(14) पातल मुख पोछण- पत्ते से मुंह पोंछना।

(15) जागर लगूण- जागर लगाना।

कुमाउनी कहावतें -

कहावत का अर्थ- कहावत शब्द की उत्पत्ति 'कह' धातु से हुई है। इसमें 'वत' प्रत्यय लगा है। अंग्रेजी में कहावत को च्तवअमतइ (प्रो-वर्ब) कहा जाता है। संस्कृत साहित्य में कहात के लिए 'आभाणक' शब्द का प्रयोग हुआ है। हिन्दी भाषा विज्ञान के ज्ञाता डॉ. के.डी.रूवाली के अनुसार 'कहावत का संबंध 'कहना' क्रिया से है। हर प्रकार का कथन कहावत की कोटि में नहीं आता। विशेष कथन को ही कहावत कहा जा सकता है। डॉ. सत्येन्द्र का अभिमत है कि कहावत लोकक्षेत्र की अपूर्व वस्तु है।

डॉ. त्रिलोचन पाण्डे ने कहावतों के संबंध में लिखा है, 'कहावतों ने इतिहास के दीर्घकालीन प्रवाह में भी अपना स्वभाव नहीं बदला है। कहावतों में राष्ट्रीय जाति धर्म आदि के समाजबद्ध तत्व पाए जाते हैं। सामाजिक जीवन की विशिष्ट परिस्थितियाँ ही कहावतों को जन्म देती हैं। जब व्यक्ति किसी परिस्थितियों या दृश्य को देखता है तो उसके मन में सहज ही कुछ विचार उत्पन्न होते हैं। ये विचार धीरे-धीरे स्थायी भाव के रूप में किसी सत्य की व्यंजना करने वाली उक्तियों के रूप में विकसित हो जाती हैं।' कहावतों के लिए लोकोक्ति शब्द भी प्रचलित है। उत्तराखण्ड के कुमाऊँ क्षेत्र का अधिकांश भूभाग पर्वतीय है। यहां की भौगोलिक परिस्थितियां बड़ी विषम हैं। कुमाउनी समाज में कहावतों का प्रचलन आरंभिक काल से हो रहा है। इन कहावतो के रचयिता सर्वथा अज्ञात हैं फिर भी जनजन के मुख से इन कहावतों का प्रयोग होता रहा है । किस देश काल परिस्थिति में कौन सी कहावत प्रयुक्त होगी, यह स्वचालित रूप में जनमानस की बुद्धि के अनुरूप प्रवाहित होती रहती है। इन कहावतों में लोक विशेष की प्रक्रिया, इतिहास तथा स्थान विशेष की कथात्मकता निहित होती है।

कुमाउनी कहावतों में हिन्दी तथा अन्य हिन्दीतर भाषाओं की कहावतों के पर्याप्त लक्षण पाए जाते हैं। कहावतों को विश्वनीति साहित्य का अभिन्न अंग माना जाता है। क्योंकि वैश्विक स्तर पर इनमें लोकसत्य के उद्घाटन की विशेष क्षमता होती है, कुमाउनी लोकजीवन के अनुरूप हम देखते है कि लोक जीवन की विभिन्न परिस्थितियों एवं मनुष्यों के पारस्परिक व्यवहार ने कहावतों को जन्म दिया है। इन लोक कहावतों में आदिम जातीय परिवारों में बोली जाने वाली लोकोक्तियों का मिश्रण है। स्थानीयता तथा सूत्रबद्धता कुमाउनी कहावतों का मूल लक्षण है।

पं.गंगादत्त उप्रेती ने कुमाउनी कहावतों का अंग्रेजी तथा हिन्दी भाषा में अर्थ स्पष्ट किया है। विषय की दृष्टि से कुमाउनी कहावतों के वर्गीकरण को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है-

(1) सामाजिक कहावतें

(2) ऐतिहासिक कहावतें

(3) धार्मिक कहावतें

(4) नीति तथा उपदेशात्मक कहावतें

(5) राजनीति संबंधी कहावतें

(6) स्थान विशेष से संबंधित कहावतें

(7) जाति विषयक कहावतें

(8) हास्य व्यंग्यपूर्ण कहावतें

(9) कृषि-वर्षा संबंधी कहावतें

(10) प्रकीर्ण कहावतें

विविध विषयाधारित कहावतों में कुमाउनी समाज की संस्कृति तथा भाषा के मूल लक्षणों एवं विशेषताओं का पता आसानी से लगाया जा सकता है।

यहां आप कुछ कुमाउनी कहावतों तथा उनके हिन्दी अर्थ को समझ सकेंगे-

(1) मुसकि ऐ रै गाउ गाउ बिराउक है री खेल- चूहे की मुसीबत आई है, बिल्ली के लिए खेल जैसा हो रहा है।

(2) जो गौं जाण नै, वीक बाट के पुछण- जिस गांव में जाना नहीं, उसका पता पूछने (रास्ता मालूम करने) से क्या लाभ।

(3) भैंसक सींग भैंस कैं भारि नि हुन- भैंस का सींग भैंस को भारी नहीं लगता अर्थात अपनी संतान को कोई भी व्यक्ति बोझ नहीं समझता।

(4) आपण सुन ख्वट परखणि कै दोष दी- अपना सोना खोटा परखने वाले को दोष।

(5) लुवक उजणण आय फाव बड़ाय, मैंसक उजड़ण आय ग्वाव बड़ाय- लोहे का उजड़ना आया तो फाल बनाया आदमी का उजड़ना आया तो उसे ग्वाला बनाया।

(6) दुसरक ख्वर पै ख्वर घोसणल आपण ख्वर चुपड़ नि हुन - दूसरे के सिर पर अपना सिर घिसने से सिर चुपड़ा नहीं हो जाता।

(7) ढको द्वार, हिटो हरिद्वार- द्वार ढको ,चलो हरिद्वार

(8) द्याप्त देखण जागस्यर म्यल देखण बागस्यर-देवता देखने हो तो जागेश्वर जाइए, मेला देखना हो तो बागेश्वर जाइए।

(9) जैक नौव नै वीक फौव- जिसकी नली (कली) नहीं उसका फल

(10) मन करूं गाणी माणी करम करूँ निखाणी- मन तो कितने ही सपने बुनता है ,पर कर्म उसे बिगाड़ देता है।

(11) जॉ कुकड़ नि हुन वॉ के रात नि ब्यानी- जहां मुर्गा नहीं बोलता हो, क्या वहां रात्रि व्यतीत नहीं होती।

(12) बागक अनारि बिराउ- बाघ के रूप में बिल्ली

(13) नानतिनाक जाड़ ढुग. में- बच्चों का जाड़ा पत्थर में

(14) कॉ राजैकि राणि कॉ भगोतियकि काणि- कहां राजा की रानी कहां भगौतिए की कानी स्त्री।

(15) पूरबिक बादोवक न द्यो न पाणि- पूरब के बादल से न वर्षा न पानी।

8.3.2 कुमाउनी पहेलियाँ

प्रकीर्ण विधाओं के अन्तर्गत कुमाउनी पहेलिया ने भी लोकसाहित्य में अपना एक अलग स्थान बनाया है। कुमाउनी में मुहावरे तथा कहावतों की भांति पहेलियों का प्रचलन भी काफी लम्बे समय से होता रहा हैं। अधिकांश पहेलियां घरेलू कामकाज की वस्तुओं तथा भोजन में काम आने वाली पदार्थों पर आधारित हैं। मानव तथा नियति सम्मत तत्वों पर भी अनेक पहेलियों का निर्माण हुआ है। कुछ कुमाउनी पहेलियां (कुमाऊँ में जिन्हें आ्ण कहते है) यहां प्रस्तुत हैं-

(1) थाई में डबल गिण नि सक चपकन सिकड़ टोड नि सक -थाली में पैसें गिन न सके मुलायम छड़ तोड़ न सके ।

उत्तर- आकाश के तारे व सांप

(2) सफेद घ्वड़ पाणि पिहूँ जाणौ लाल घ्वड़ पाणि पि बेर ऊणौ- सफेद घोड़ा पानी पीने जा रहा है लाल घोड़ा पानी पीकर आ रहा है- उत्तर - पूड़ी तलने से पूर्व तथा पश्चात

(3) ठेकि मैं ठेकि बीचम भै गो पिरमू नेगि-बर्तन पर बर्तन बीच में बैठा पिरमू नेगी- उत्तर - गन्ना

(4) लाल लाल बटु भितर पितावक डबल- लाल लाल बुटआ भीतर पीतल के सिक्के उत्तर (लाल मिर्च)

(5) भल मैंसकि चेली छै कलेजा मजि बाव- अच्छे आदमी की लड़की बताते हहैं कलेजे में है बाल –उत्तर- आम

(6) काइ नथुली सुकीली बिन्दी -काली नथ सफेद बिन्दी - उत्तर- तवा और रोटी

(7) तु हिट मी ऊनूं - तू चल मैं आता हूँ

उत्तर सुई तागा

(9) मोटि मोटि कपड़ा हजार- मोटा मोटा कपड़े हजारउत्तर प्याज

8.3.3 अन्य रचनाएं

कुमाउनी लोकसाहित्य की प्रवृत्तियों में स्फुट रचनाओं का भी बड़ा महत्त्व है। लोकजीवन में वर्षो से चली आ रही मौखिक परंपरा में इन रचनाओं को जनमानस ने अपनी जिह्वा पर जीवंत किया है। इन रचनाओं में बालपन की हंसी ठिठोली, गीत तथा बालखेल गीत निहित हैं। बच्चों द्वारा झुंड बनाकर खेले जाने वाले खेलों में कुमाउंनी गीतों को स्थान मिला है। ये गीत बच्चों द्वारा ही खेल में गाए जाते हैं तथा पीढ़ी दर पीढ़ी बच्चों को ये गीत हस्तांतरित होते रहते हैं।

कुमाऊँ में तंत्र-मंत्रका प्रचलन बहुत अधिक हैं। यहां निवास करने वाली आदिवासी जनजातियों में तंत्र-मंत्रका चलन बहुत पुराना है। सभ्य समाज के लोग भी झाड़ फूंक तथा तंत्र-मंत्रमें बहुत आस्था रखते हैं। मनुष्य तथा जानवरों को होने वाली व्याधियों के निवारण के लिए झाड़-फूंक तथा मंत्रों का सहारा लिया जाता है। पीलिया रोग होने पर उसे झाड़ने की परंपरा है।गाय भैंसों को घास से विष लगने पर उन्हें झाड़ फूंक कर इलाज करने की परंपरा प्राचीन काल से चली आ रही हैं। इसके अतिरिक्त हास परिहास के लिए या वातावरण को मनोरंजक बनाने के लिए तुकबन्दी करने की परंपरा स्पष्ट दिखाई देती है। ये तुकबन्दियां पारिवारिक सामाजिक नातेदारी की स्थिति का निरूपण बड़े ही हास्य व्यंग्यपूर्ण ढंग से करती है।लोकनाट्य के अन्तर्गत स्वांग करना, प्रहसन करना, रामलीला पांडवलीला, राजा हरिश्चन्द्र का नाटक, रामी बौराणी की कथा पर आधारित नाट्य आदि सम्मिलित हैं। यह लोकमानस की भावभूमि पर स्थानीय परंपरा का उल्लेख करती हैं।

बोध प्रश्न

8.3 क- सही विकल्प का चयन कीजिए

1- छाति खोलण (छाती खोलना) है-

I. मुहावरा
II. कहावत
III. लोकनाट्य
IV. तुकबन्दी

2- खसियकि रीश, भैंसकितीस (क्षत्रिय का क्रोध , भैंस की प्यास) क्या है-

I. लोकगीत
II. लोककथा
III. कहावत
IV. मुहावरा

3. पांडव लीला किस विधा के अन्तर्गत आती है?

I. लोकनृत्य
II. लोकनाट्य
III. मुहावरा
IV. कहावत

4. कुमाउनी लोकसाहित्य की कहावत विधा में पाया जाता है-

I. गीतितत्व
II. नाटक के तत्व
III. कथा तत्व
IV. मुहावरा

(ख) निम्नलिखित लघुउत्तरीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए-

(1) कहावत तथा मुहावरे में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

(2) कुमाउनी पहेलियों के चार उदाहरण देते हुए उनका हिन्दी अर्थ तथा उत्तर लिखिए।

8.4 कुमाउनी प्रकीर्ण विधाओं की विशेषताएँ तथा महत्त्व

कुमाउनी प्रकीर्ण विधाएँ लोकमानस के उर्वर भावभूमि के प्रदर्श हैं। आप समझ गए होंगे कि वाचिक परंपरा से ये विधाएं विकसित होकर परिनिष्ठित साहित्य में भी धीरे-धीरे अवतरित होती रही हैं। इन स्फुट विधाओं में कुमाऊँ का लोक साहित्य एवं संस्कृति का निरूपण करने में भी अग्रणी रही हैं। इनकी विशेषताओं एवं महत्त्व को संक्षेप में यहां प्रस्तुत किया जाता है-

कुमाउनी प्रकीर्ण विधाओं की विशेषताएं

(1) कुमाउनी मुहावरे तथा कहावतों में लाक्षणिक अर्थ की प्रधानता होती है। ये प्रकीर्ण विधाएं अपने साधारण अर्थ को छोड़कर किसी विशेष अर्थ की प्रतीति कराते हैं।

(2) कुमाउनी प्रहेलिकाओं, तुकबंदी ,मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ व्यंग्यार्थ का बोध कराती हैं। व्यंग्य के माध्यम से समाज की दशा व दिशा का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता हैं।

(3) वाक् चातुर्य कहावतों तथा तुकबन्दी का प्रमुख लक्षण है। कथन की गंभीरता के लिए मुहावरे एवं कहावते युग युगों से प्रसिद्ध हैं।

(4) कुमाउनी मुहावरे , कहावतों, पहेलियों तथा तुकबन्दी एवं बालगीतों में संक्षिप्तता पायी जाती है। साधापणतया कहावते एवं मुहावरों को सूक्ति या सूक्तिपरक संक्षिप्त कथन के रूप में देखा जाता हैं।

(5) कुमाउनी प्रकीर्ण विधाओं में सजीवता पायी जाती है। लोकसत्यानुभूति इन प्रकीर्ण विधाओं की प्रमुख पहचान है।

(6) कुमाउनी कहावतों सहित अन्य प्रकीर्ण स्फुट विधाओं के रचयिता सर्वथा अज्ञात हैं। ये स्फुट विधाएँ गद्य एवं पद्य साहित्य के रूप में संचरित रहे है।

महत्त्व - कुमाउनी साहित्य के विविध रूपों में परिनिष्ठित साहित्य द्वारा यहाँ के लोक सम्मत आख्यान तो समय समय पर प्रकट होते रहते हैं, किन्तु एक मौखिक परंपरा के रूप में वर्षों से चली आ रही कहावत,मुहावरा ,पहेलियाँ लोकनाट्य आदि विधाओं का कुमाउनी लोकसाहित्य के क्षेत्र में अलग महत्त्व है।वर्तमान में कुमाऊँ क्षेत्र के बुजुर्ग स्त्री पुरूषों के मुख से इन प्रचीन कहावतों लोकोक्तियों एवं मुहावरों का प्रचलन होता रहा है। इससे पता चलता है कि वर्तमान में भी साहित्य की मौलिक विधा तथा उसके यथार्थ को कुमाऊँ के जन बहुत महत्त्व प्रदान करते हैं।प्रतिवर्ष नवरात्र में आयोजित होने वाली रामलीलाओं में लोकनाट्य परंपरा का कुशल निर्वहन होता रहा है। इन लोकनाट्य में कृष्ण लीला , पांडव लीला, सत्य हरीशचन्द्र नाटक ,रामी बौराणी सहित कई लोक सम्मत गाथाओं को मंचित कर प्राचीन गरिमामय चरित्रों का प्रस्तुतीकरण किया जाता हैं।जहाँ तक मुहावरे तथा कहावतों का प्रश्न है इनमें अपने लाक्षणिक अर्थ के साथ गागर में सागर भरने की प्रवृति मिलती है। साधारण शब्द देकर विषय गाम्भीर्य का परिचय हमें इनके द्वारा आसानी से प्राप्त होता है। व्यंग्यार्थ मूलक स्फुट विधाओं के द्वारा यहाँ की लोक मनोवैज्ञानिक शैली का पता लगाया जा सकता है।आदिम समाज शिक्षित नहीं होते हुए भी कितना विवकेशील था। उसने अपनी प्रतिभा की सहजात वृत्ति से कितनी ही लोक विधाओं को विकसित किया । इन सभी बातों पर सम्यक रूप से विचार करने के उपरांत कहा जा सकता है कि संसार की चाहे कोई भी विधा या संस्कृति क्यों न रही हो, उसका समाज के लिए मानस निर्माण का महत्त्व सदा रहा है। ये स्फुट गद्य विधाएँ भी हमारे कुमाउनी समाज को नैतिकता , मानवता, तथा सद्भाव का पाठ पढ़ाने में समर्थ हैं। एक सामाजिक लोक दर्पण के रूप में इन रचनाओं का महत्त्व सदा बना रहेगा।

बोध प्रश्न

8.4 के बोघ प्रश्न

लघुउत्तरीय प्रश्न

(1) कुमाऊँ के प्रचलित किन्ही चार स्फुट विधाओं के नाम लिखिए।

(2) कुमाउनी प्रकीर्ण (स्फुट) विधाओं की चार विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

(3) कुमाउनी कहावतों एवं मुहावरों का सामाजिक महत्त्व समझाइए।

8.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप -

(1) कुमाउनी लोकसाहित्य की अन्य प्रवृत्तियों के बारे में ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे।

(2) कुमाउनी मुहावरे तथा कहावतों के आशय को समझ चुके होंगे।

(3) कुमाऊँ में प्रचलित पहेलियाँ तथा उनके उत्तरों को जान गए होंगे।

(4) कुमाउनी स्फुट गद्य विधाओं की विशेषताओं तथा महत्त्व को समझ गए होंगे।

8.6 शब्दावली

लोकोक्ति - लोक प्रचलित बात या कथन

प्रकीर्ण - विविध

स्फुट - विविध ,अन्य

लोकनाट्य - लोक नाटक

तुकबन्दी - स्वतः पदों के मिलान की प्रवृत्ति

व्यंग्यार्थ - व्यंग्य का अर्थ

सहज - स्वाभाविक

गूढ़ आख्यान - गहन भाव या रहस्यमय विचारधारा

प्रतीति - बोध

8. 7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.3 के उत्तर

क - (1) मुहावरा

(2) कहावत

(3) लोकनाट्य

(4) कथातत्व

8.4 के उत्तर

(1) मुहावरा

(2) कहावत

(3) तुकबन्दी

(4) पहेलियाँ

8.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

(1) पाण्डे,त्रिलोचन, कुमाउनी भाषा और उसका साहित्य , पृ -328-343

(2) पोखरिया ,डी.एस. , लोकसंस्कृति के विविध आयाम, पृ - 76- 78

(3) दुबे, हेमचन्द्र,कुमाउनी कहावतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन (अप्रकाशित शोध प्रबंध) पृ- 36 -48

8.9 सहायक ग्रंथ सूची

(1) जनपदीय भाषा साहित्य ,डॉ. शेरसिंह विष्ट तथा डॉ. सुरेन्द्र जोशी, अंकित प्रकाशन हल्द्वानी

(2) कुमाउनी भाषा और साहित्य का उद्भव एवं विकास ,प्रो. शेर सिंह बिष्ट,अंकित प्रकाशन हल्द्वानी (नैनीताल) 2006

8.10 निबंधात्मक प्रश्न

(1) कुमाउनी लोकसाहित्य के क्षेत्र में कहावतों तथा मुहावरों के योगदान की विस्तृत चर्चा कीजिए।

(2) कुमाउनी स्फुट रचनाओं पर एक सारगर्भित लेख लिखिए।

इकाई 9 लोक साहित्य के संरक्षण की समस्या एवं समाधान

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
9.2उद्देश्य
9.3 लोक साहित्य
9.4 लोक साहित्य के संग्रहण की आवश्यकता एवं प्रयास
9.5 लोक साहित्य के संकलन एवं संग्रहण से जुड़ी समस्याएं
9.6 लोक साहित्य के संरक्षण के प्रयास
9.7 लोक साहित्य संग्रहकर्ता के उपादान
9.8 लोक साहित्य संग्रह की समस्याओं का समाधान
9.9 सारांश
9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची
9.12 उपयोगी पाठ् सामग्री
9.13 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

यह इकाई लोक संस्कृति के अध्ययन एवं संरक्षण की प्रविधियों पर बात करता है। लोक संस्कृति का प्राण-तत्त्व लोक साहित्य है। यदि लोक जीवन न हो तो लोक मानव का जीवन नीरस और निष्क्रिय होकर यंत्रवत् हो जायेगा। उसकी सहज मुस्कुराहट, उत्साह, उल्लास, उमंग समाप्त ही हो जायेंगे। वास्तव में लोक साहित्य से प्रेरणा पाकर ही मानव जीवन सदैव ऊर्जावान बना रहता है इसलिए इस लोक साहित्य को बचाना एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य है। हमने इससे पहले की इकाई में लोक क्या है? समाज और संस्कृति इत्यादि की अवधारणा को समझने की कोशिश की है। इस इकाई में हम लोक संस्कृति और लोक साहित्य क्या है? समझ सकेंगे। लोक संस्कृति और लोक साहित्य में अंतर को समझ सकेंगे। इस अध्याय में हम लोक साहित्य और लोक संस्कृति के संरक्षण की प्राविधि को समझेंगे। इस अध्याय में हम यह भी समझने का यत्न करेंगे की लोक साहित्य और लोक संस्कृति के संरक्षण में क्या चुनौतियाँ हो सकती हैं? इसके संरक्षण के लिए सांस्थानिक और व्यक्तिगत प्रयास कैसे संभव है। सरकार अथवा अन्य संगठन कैसे इसे बचाने और प्रसारित करने के प्रयास कर रहे हैं।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप

लोक साहित्य के संरक्षण के क्षेत्र में आने वाली समस्याओं से अवगत हो सकेगें।

लोक साहित्य के संरक्षण में आने वाली कठिनाइयों के समाधान की दिशा में भी सोच सकेंगे।

लोक साहित्य के संरक्षण के महत्त्व को जान सकेंगे.

लोक साहित्य क्या है? समझ सकेंगे।

लोक साहित्य के अध्ययन एवं संरक्षण की प्रविधियों को समझ सकेंगे।

लोक साहित्य और लोक संस्कृति के अंतर को समझ सकेंगे।

लोक साहित्य के स्वरुप को समझ सकेंगे।

लोक साहित्य के संरक्षण की भारतीय और पाश्चात्य तरीकों को जान सकेंगे।

9.3 लोक साहित्य

मनुष्य स्वभाव से समूह में रहता है। सामूहिकता मनुष्य के स्वाभाव का जैविक और अभिन्न हिस्सा है। मनुष्य अपने उद्विकास में इसी सामूहिकता की वजह से अपने को सबल बनाया है और संरक्षित किया है। उसने अपने जीवन-शैली को विभिन्न रीति के तहत संरक्षित किया है। अपनी मान्यताओं को संरक्षित और संवर्धित करने के लिए उसने उसे लोक

रीति, लोक मान्यता, लोक जीवन, लोक साहित्य को संरक्षित करने का प्रयास किया। यही वजह है कि यह सामूहिक, एकल और सांस्थानिक तीनों स्तर पर घटित होता है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। जो उसने देखा, महससु किया उसे कविता में विरोया। इसी प्रकार साहित्य का जन्म हुआ। मोटे तौर पर साहित्य के दो प्रकार होते हैं-एक शिष्ट-सुसंस्कृत साहित्य जो शिक्षित लोगों से रचित होता है और लिपिबद्ध होता है उसे शिष्ट साहित्य या परिनिष्ठित साहित्य कहा जाता है। दूसरा साहित्य वह है जो असंस्कृत, अशिक्षित जनसामान्य का साहित्य होता है और मौखिक होता है, उसे लोक साहित्य कहा जाता है। लोक साहित्य की एक लंबी एवं प्राचीन परंपरा मिलती है। लोक साहित्य दो शब्दों से बना है- लोक+साहित्य। लोक साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जिसकी रचना लोक करता है। 'लोक' शब्द समस्त जन समुदाय के लिए प्रयुक्त होता है। लोक शब्द का अर्थ है- देखने वाला। वैदिक साहित्य से लेकर वर्तमान समय तक लोक शब्द का प्रयोग जनसामान्य के लिए हुआ है। लोक शब्द से अभिप्राय उस संपूर्ण जन समुदाय से है जो किसी देश में निवास करता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, " लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है, बल्कि नगरों और गांव में फैली हुई वह समस्त जनता है, जिसके व्यवहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है।" कहने का भाव यह है कि जिन का ज्ञान जीवन के अनुभवों पर आधारित है अतः लोक साहित्य जन सामान्य के जीवन अनुभवों की अभिव्यक्ति करने वाले साहित्य का नाम है।लोक साहित्य उतना ही प्राचीन है जितना की मानव क्योंकि इसमें जनजीवन की प्रत्येक अवस्था, प्रत्येक वर्ग प्रत्येक समय और प्रकृति सभी कुछ समाहित है। लोक साहित्य एक तरह सेजनता की संपत्ति है। इसे लोक संस्कृति का दर्पण भी कहा जाता है। जन संस्कृति का जैसा सच्चा एवं सजीव चित्रण लोक साहित्य में मिलता है वैसा अन्य कहीं नहीं मिलता। सरलता और स्वभाविकता के कारण यह अपना एक विशेष महत्व रखता है। साधारण जनता का हंसना, रोना खेलना गाना जिन शब्दों में अभिव्यक्त हो सकता है वह सब कुछ लोग साहित्य में आता है।

धीरेंद्र वर्मा के अनुसार , " वास्तव में लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढ़ी हो पर आज इसे सामान्य लोक समूह अपनी ही मानता है। इसमें लोकमानस प्रतिबिंबित रहता है।"

डॉ त्रिलोचन पांडे के अनुसार, " जन-साहित्य या लोक-साहित्य उन समस्त परंपराओं, मौखिक तथा लिखित रचनाओं का समूह है जो किसी एक व्यक्ति या अनेक व्यक्तियों द्वारा निर्मित तो हुआ है परंतु उसे समस्त जन समुदाय अपना मानता है। इस साहित्य में किसी जाति, समाज या एक क्षेत्र में रहने वाले सामान्य लोगों की परंपराएं, आचार-विचार, रीति-रिवाज, हर्ष-विषाद आदि समाहित रहते हैं।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि लोक साहित्य और लोक जीवन को अभिव्यक्त करने वाला साहित्य है। यह सर्वसाधारण की संपत्ति है लोक साहित्य जीवन का वर समुद्र है जिसमें भूत भविष्य वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। इस साहित्य में लोग जीवन की सच्ची झलक देखने को मिलती है। यह कैसी कृति है जिस पर समस्त लोग का समान अधिकार है। लोक व्यवहार शिक्षा का आधार कहा जाता है।

9.4 लोक साहित्य के संग्रहण की आवश्यकता एवं प्रयास

लोक साहित्य नगर में हो अथवा गांव में वह लोक साहित्य जी और दोनों ही स्थानों पर उसके मूल रूप में क्षय की संभावना बढ़ी है। एक ओर जहां प्रचलित लोक साहित्य को सहेजना कठिन है तो दूसरी ओर लुप्त, बिखरे और फैले हुए

लोक साहित्य का संकलन साहित्य कर्ताओं के लिए एक बड़ी चुनौती है। प्रत्येक क्षेत्र और समाज का अपना लोक साहित्य है। उस का संकलन करने से विभिन्न क्षेत्रों की संस्कृति और जीवन को नया रंग प्राप्त होगा। लोक साहित्य का अध्ययन आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है संपूर्ण विश्व में लोक साहित्य का आपसी समन्वय भी बन रहा है लोक साहित्य के संकलन में प्राप्त सामग्री का संपूर्ण विश्व में अनेक क्षेत्रों में उपयोग किया जा सकता है। लोक साहित्य के सामाजिक सांस्कृतिक धार्मिक शैक्षणिक नैतिक ऐतिहासिक एवं भाषा वैज्ञानिक क्षेत्र में महत्व को देखते हुए आज इसके संकलन की सबसे बड़ी आवश्यकता महसूस होती है। लोक साहित्य के संकलन का कार्य अनेक विधियों द्वारा किया जा रहा है जिन का परिचय इस प्रकार है-

प्राचीन समय में संग्रहण

भारत में लोक साहित्य पर शोध कार्य का प्रारंभ तीन दिशाओं में हुआ-

क. अंग्रेज प्रशासकों के वर्ग द्वारा
ख. ईसाई प्रचारकों द्वारा
ग. भारतीय विद्वानों द्वारा

इन दोनों का लक्ष्य भारतीय लोक मानस को समझ कर अपने अनुकूल बनाना था। प्रशंसक वर्ग भारतीयों के आचार विचार परंपराओं विश्वासों को समझ कर उन्हें नियंत्रित करना चाहता था तो ईसाई प्रचारक धर्म परिवर्तन के अवसरों की खोज में थे। सर कर्नल टॉड की पुस्तक "एनल्स एंड एंटीक्विटीज ऑफ राजस्थान अथवा सेंट्रल एंड वेस्टर्न राजपूत स्टेट्स ऑफ इंडिया" ने, सर ग्रियर्सन, विलियम क्रुक, ई. थर्सटन आदि विद्वानों ने दक्षिणी भारत, राजस्थान, पंजाब, बंगाल तथा उत्तर भारत के विभिन्न जनपदों की लोक-संस्कृति के संग्रह, संपादन, अध्ययन तथा प्रकाशन में अत्यधिक भूमिका निभाई। भारतीय लोक साहित्य के संकलन अध्ययन और प्रकाशन का कार्य काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा किया गया। कोमल कोठारी (Monograph on Langas of Folk Musical Cast of Rajasthan' और 'Folk Musical Instruments of Rajasthan Folio'), रामनारायण उपाध्याय ('लोक साहित्य समग्र'), डॉक्टर सत्येंद्र (ब्रज भाषा का लोक साहित्य), रामनरेश त्रिपाठी (कविता कौमुदी), कृष्ण देव उपाध्याय (लोक साहित्य की भूमिका), वासुदेव शरण अग्रवाल, देवेंद्र सत्यार्थी, श्री झवेरचंद मेघाणी (गुजराती लोक साहित्य), राम प्रसाद दाधीच, श्याम परमार (मालवी लोक साहित्य), डॉ. सत्या गुप्ता (खड़ी बोली का लोक साहित्य), डॉ. अर्जुन देव चारण (राजस्थानी ख्याल साहित्य), डॉ.चंद्रशेखर रेड्डी (आंध्र लोक साहित्य), डॉ. त्रिलोचन पांडे (कुमायूं लोक साहित्य), डॉ. गोविंद चातक (गढ़वाली लोक गीतों का सांस्कृतिकअध्ययन), डॉ.उदय नारायण तिवारी (भोजपुरी मुहावरे और पहेलियां) इत्यादि अनेक ऐसी विभूतियां हैं जिन्होंने लोक साहित्य के अध्ययन के क्षेत्र में अपना विशिष्ट योगदान दिया है।

वर्तमान में संग्रहण

वर्तमान में लोक साहित्य के संकलन का कार्य तीन प्रकार से हो रहा है-

शौकिया संग्रहकर्ताः शौकिया संग्रह करता अपने शौक के लिए लोक साहित्य का संग्रह करता है। एक शौकिया संग्रह करता व्यवसाय या लेखक कुछ भी हो सकता है जो अपनी जिज्ञासा हुई थी या सूची के अनुसार लोक साहित्य की विधाएं संकलित कर उनका पठन-पाठन करता है। लोक साहित्य की यह सामग्री अत्यधिक महत्वपूर्ण होती है क्योंकि इसमें व्यक्तिगत रूचि एवं महत्वपूर्ण तथ्य शामिल होते हैं।

व्यक्तिगत अनुसंधानकर्ताः व्यक्ति अनुसंधानकर्ताओं का अस्तित्व आरंभ से लेकर आज तक मिलता है। जब कोई व्यक्ति अपने शोध से संबंधित, लेख के लिए, पुस्तक के लिए या आलेख पत्र के लिए लोक साहित्य से संबंधित सामग्री की खोज करता है एवं उन्हें प्रामाणिक तथ्यों के साथ पोस्ट करते हुए प्रस्तुत करता है वह व्यक्तिगत अनुसंधानकर्ता कहलाता है। लोक साहित्य का अध्ययन आरंभ से लेकर आज तक व्यक्तिगत अनुसंधानकर्ताओं द्वारा ही किया जा रहा है। अनुसंधानकर्ता विभिन्न शोध दृष्टियों द्वारा लोक साहित्य का संकलन करता है।

संगठित अनुसंधानकर्ताः संगठित अनुसंधानकर्ता दो तरह के होते हैं-

विश्वविद्यालयों के संगठन- जिनमें विभिन्न शोधकर्ता या विभाग अपने अपने हिसाब से लोक साहित्य संबंधी आंकड़ों को एकत्रित करते हैं।

संस्थाओं के संगठन- विभिन्न संस्थाएं भी अपने स्तर पर लोक साहित्य के संकलन का कार्य कर रही हैं।

9.5 लोक साहित्य के संकलन एवं संग्रहण से जुड़ी समस्याएं

लोक साहित्य का अध्ययन आज सबसे बड़ी आवश्यकता है। शिक्षा में इसे महत्वपूर्ण स्थान मिल चुका है तथा विश्वविद्यालयों में भी इसी विषय के रूप में स्वीकारा जा रहा है। संपूर्ण विषय में लोक साहित्य का आपसी समन्वय भी बन रहा है परंतु लोक साहित्य के संगठन का कार्य अत्यंत कठिन है। यह मानवीय क्षेत्र है। हस्तलिखित ग्रंथों की खोज तो कठिन है ही साथ ही उसके प्रकाशन और प्रचार-प्रसार का कार्य भी उतना ही कठिन है। लोक साहित्य तो मौखिक अभिव्यक्ति है अतः इसका संकलन अत्यंत कठिन कार्य है। लोक साहित्य का संरक्षण एक अत्यंत दुष्कर कार्य है। इसके पग-पग पर अनेक विभिन्न बाधाएँ प्रस्तुत होती रहती हैं। यह काम पर्याप्त समय और धन की अपेक्षा रखता है। इसका मूलरूप सुदूर पिछड़ी जातियों के मौखिक परम्परा में ही शेष है। आज की विकास की दौड़ ने इन ग्राम्य प्रदेशों में नागरिक सभ्यता का प्रभाव पड़ा है और ये लौकिक साहित्य आज अपना मूल रूप खोते जा रहे हैं। इसके संग्रह और संकलन का कार्य बहुत ही परिश्रम साध्य है। इस कार्य के निष्पादन में बहुत सी समस्याओं का सामना करना पडता है।

1. **लोक गायकों का अभाव** : लोक गायक धीरे-धीरे कम होते जा रहे हैं। पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार-प्रसार ने लोक गीतों के प्रति लोगों के मन में उपेक्षा का भाव ला दिया है। वृद्ध पीढ़ी इन गीतों को संरक्षित रखे हुए है। अतः इनका संग्रह एक कठिन काम बन गया है।

2. **पर्दे की प्रथा** : ग्रामीण क्षेत्रों के अधिकांश स्त्रियाँ पर्दे का व्यवहार करती हैं। ऐसी स्थिति में इनके कंठ में संरक्षित गीतों का संग्रह करना एक दुष्कर कार्य है।

3. **पुनरावृत्ति में असमर्थता** : अकसर लोक गायक अपनी मस्ती में लोक गाथाओं का गान करते हैं। सुर, लय ताल से निबद्ध भावावेश में गाये गीतों को कभी-कभी यथावत् संग्रह करना कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में किसी छूटी पंक्ति को पुनः गाने में गवैया असमर्थ होता है। इसीप्रकार स्त्रियों के मांगलिक अवसरों पर समवेत स्वर में गाये गीतों पर भी पुनः गायन की समस्या रहती है।

4. **विशेष समय पर ही गायन का क्रम** : लोक गीतों के संग्रह कर्ता के सामने सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि ऋतु विशेष पर, अवसर विशेष पर या आयोजन विशेष पर ही कुछ गायन संभव हो पाते हैं। इन्हें कभी भी गवैयों से सुनने के अवसर नहीं मिल पातें। संग्रह कर्ता को अनुकूल समय की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। उदाहरण के लिए रोपनी के गीत, खेतों में धान रोपते समय ही गाये जाते हैं। प्रतिकूल अवसर पर इनकी उपलब्धि संभव नहीं। उत्तराखण्ड के संदर्भ में 'जागर' इत्यादि गीत पूजा या आयोजन के समय ही अनुकूल वातावरण की सृष्टि के साथ गाये जाते हैं। इनका संग्रह कही भी और कभी भी के आधार पर नहीं किया जा सकता।

5. **संकोची मनोवृत्ति** : प्रायः सुदूर ग्रामीणवर्ती क्षेत्र के लोग संकोची प्रवृत्ति के होते हैं। उनसे गीतों को समझकर लिपिबद्ध कराना अत्यंत कठिन काम है।

6. **दुर्गम प्रदेश** : देश के कई अथवा अधिकांश प्रदेश दुर्गम, अतिदुर्गम इलाकों में बसे हैं। वहाँ तक पहुँचना बहुत टेढी खीर है। यातायात के न तो उपयुक्त साधन है न कई क्षेत्रों में विधिवत् सड़कें ही बनी हैं। मीलों दूर पैदल चलकर सुदूर स्थलों पर पहुँचना संग्रह कर्ता के लिए अत्यंत कष्ठकारी है। यही नहीं यहाँ की भौगोलिक स्थिति और मौसम समय-समय पर रंग बदलता है। ऐसी स्थिति में संग्रह कर्ता से पर्याप्त धैर्य, साहस और जीवट की अपेक्षा की जाती है।

7. **श्रम साध्य कार्य** : लोक साहित्य का संकलन अत्यंत परिश्रम का कार्य है। धरती पुत्रों द्वारा सहज भाव गाए जाने वाले गीतों, सुनाई जाने वाली कथाएं और खेले जाने वाले नाटकों को लिपिबद्ध करना अत्यंत कठिन होता है। वर्तमान में लोक गायक धीरे-धीरे कम होती जा रहे हैं। पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार-प्रसार ने लोकगीतों के प्रति लोगों के मन में उपेक्षा का भावना दिया है केवल वृद्ध पीढ़ी इन गीतों को सुरक्षित रखे हुए है। दूसरी ओर ग्रामीण क्षेत्रों के अधिकांश गीत या गाथाएं स्त्रियों द्वारा गाए व सुनाई जाती है। मित्रों की अधिकांश स्त्रियां पर्दे का व्यवहार करती है तथा ऐसे में पूर्ण जानकारी एकत्रित करना एक दुष्कर कार्य है। कुछ लोकगीत या लोक गाथाएं ऐसी हैं जो विशेष समय पर ही गई व सुनाई जाती है अतः इनका संग्रह उसी समय किया जा सकता है। इस तरह लोक साहित्य का संग्रह कठिन काम बन जाता है

8. **संदिग्ध विश्वसनीयता** :लोक साहित्य संबंधी आंकड़े मानवीय हृदय के भावों पर निर्भर होते हैं यह आंकड़े प्रत्येक समाज में परिवेश के अनुकूल परिवर्तित होते रहते हैं। ऐसी स्थिति में लोक साहित्य का संग्रह करने वालों पर विश्वसनीयता संदिग्ध रहती है अर्थात संग्रह कर्ताओं ने सही आंकड़ों का चयन किया है या नहीं इस पर पूर्ण विश्वास करना कई बार कठिन हो जाता है।

9. **प्राचीन परंपराओं पर आधुनिकता का प्रभाव** : आधुनिक समय में परंपराओं की महत्ता कम होती जा रही है। पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण करने वाली आधुनिक पीढ़ी प्राचीन संस्कारों में अधिक विश्वास नहीं रखती। आधुनिक युग में रात रात भर अलाव के पास बैठकर कथा कहानियां कहने वाले रिवाज भी समाप्त होते जा रहे हैं। धार्मिक अवसरों

पर गाए सुनाए जाने वाले गीत और कथाएं भी नाममात्र ही शेष रह गई है। आधुनिक संचार माध्यमों जैसे रेडियो और टेलीविजन ने सामूहिक ग्रामीण जीवन को छिन्न-भिन्न कर दिया है। ऐसी स्थिति में लोक साहित्य विधाओं का संग्रहण कठिन हो जाता है।

10. **धार्मिक अंधविश्वास** : धार्मिक अंधविश्वास भी लोक साहित्य को लिपिबद्ध करवाने में बाधक बनते हैं लोक में निजी ज्ञान को गुप्त रखने की प्रवृत्ति सदा से रही है। लोक साहित्य का संबंध पर्व त्यौहार, पूजा-जात्रा, श्रम-विश्राम, मेले, व्रत, अनुष्ठान आदि से रहता है। लोक गायक समय के विरुद्ध इन्हें गाने सुनाने में सदा आनाकानी करते हैं। लोग अपने धार्मिक विश्वासों को बाहरी लोगों के सामने नहीं लाना चाहते तथा पढ़े-लिखे शोधार्थियों को भी वह शंका की दृष्टि से देखते हैं। ऐसी स्थिति में सही आंकड़े प्राप्त करना दुष्कर हो जाता है।

11. **पुनरावृति में असमर्थता** : अक्सर लोक गायक अपनी मस्ती में लोक गाथाओं या लोकगीतों का गान करते हैं। सूर, ताल से निबद्ध भावावेश में गाए गए गीत कभी-कभी उसी रूप में संग्रह करना कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में किसी छूटी पंक्ति को पुनः गाने में गायक असमर्थ होता है। इसी प्रकार स्त्रियों के मांगलिक अवसरों पर एक स्वर में गाए गए गीतों का भी उन्हें गायन करना या उन्हें लिपिबद्ध करना समस्या रहती है।

12. **भाषा विषयक ज्ञान की कमी** : प्रत्येक समाज की भाषा व बोली अलग-अलग होती है। संग्रह करता को समाज के इतिहास वह पूर्व परंपरा के साथ-साथ लोक बोलियों की जानकारी होना आवश्यक होता है। एक संग्रह करता के लिए प्रत्येक समाज की भाषा वह बोली को जानना असंभव है। कई बार लोक गायक परंपरागत शब्दावली भूल जाते हैं तो उसमें अपनी ओर से कुछ ना कुछ जोड़कर उसे आगे बढ़ाते हैं। अतः संग्रहकर्ता के लिए उन छूटे गए अंशों को खोज कर निकाला सरल नहीं होता।

13. **अनुसंधानकर्ताओं का उदार एवं अवसरवादी दृष्टिकोण** : विदेशी अनुसंधानकर्ताओं के उदार एवं अवसरवादी दृष्टिकोण के कारण लोक साहित्य से जुड़े कलाकारों को धन पाने की लालसा भी रहती है। एक साधारण शोधकर्ता कई बार धनराशि नहीं दे सकता। अतः लोक कलाकार उसे जानकारी देने में आनाकानी करते हैं। कई पहाड़ी प्रदेशों में लोक गायक प्रायः मदिरापान आदि के अभ्यस्त होते हैं और शोधार्थी के लिए इसकी व्यवस्था करना सहज नहीं होता।

14. **प्रकाशकों की समस्या** : लोक साहित्य का प्रकाशन एक सबसे बड़ी समस्या है। प्रकाशक वही छापता है जो बिकता है। विभिन्न बोलियों में रचा गया लोक साहित्य पढ़ने वाले बहुत कम रह गए हैं। सरकारी विभागों की ओर से भी प्रायः लोक साहित्य और लोक साहित्यकारों को उपेक्षा ही मिलती आई है जिसके कारण लोक साहित्य के प्रकाशन में बाधा उत्पन्न होती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि लोक साहित्य का संग्रहण एक सबसे बड़ी समस्या और कठिन कार्य है। वर्तमान युग में जटिल एवं भौतिकता प्रधानता बढ़ती जा रही है जिसके कारण सहज और स्वच्छ प्रवृत्तियों से जुड़े साहित्य का सरंक्षण कठिन होता जा रहा है। लोक साहित्य के संकलन एवं सरंक्षण के लिए संग्रहकर्ता को क्षेत्र विशेष की परंपराओं का ज्ञान होना आवश्यक है, साथ ही वहां की भाषा पर भी अच्छा अधिकार हो तभी वह वहां की परंपराओं को पूर्णता लिपिबद्ध कर सकता है। इसके साथ-साथ लोक साहित्य का संग्रह करने वाले व्यक्ति का व्यवहार सामाजिक होना जरूरी है ताकि

वह स्थानीय जनता के प्रति सहानुभूति पूर्वक व्यवहार कर उनके विश्वासों, प्रथाओं और अंधविश्वासों के लिए सम्मान प्रदर्शित कर सके। अन्यथा स्थानीय लोग आत्मीयता के भाव के बिना अपनी प्रथाओं और विश्वासों की जानकारी उसे नहीं देंगे। इसके साथ-साथ संकलनकर्ता की दृष्टि निष्पक्ष व वस्तुनिष्ठ होनी चाहिए। अधिकांश में लोक साहित्य मौखिक या श्रुत परंपरा में ही जीवित रहता है। ऐसे मैं लोक साहित्य को लिपिबद्ध करना कठिन कार्य है। जो उस क्षेत्र की बोली को जानता हो या उसके से विशेष की बोली का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन करने में समर्थ हो वही शुद्ध लिप्यंकन कर सकता है। एक संग्रहकर्ता के लिए विषय बोध, जिज्ञासा, दूरदृष्टि, आत्मानुशासन, ईमानदारी, वस्तुनिष्ठता, निर्भीकता, धैर्यशील था, समयनिष्ठा, व्यवहार कुशलता, परिश्रम और संघर्षशीलता तथा आधुनिक तकनीकों का जानकारी आदि गुणों का होना आवश्यक है।

9.6 लोक संस्कृति के संरक्षण के प्रयास

लोक संस्कृति के संरक्षण के प्रयास सांस्थानिक, अकादमिक एवं व्यक्तिगत स्तर पर होते रहते हैं। वर्तमान में कई तरह के प्रयास संभव हो रहे हैं। उदहारण के तौर पर

क. क्षेत्रीय सांस्कृतिक केंद्र,
ख. गुरु शिष्य परंपरा,
ग. ऑक्टेव,
घ. राष्ट्रीय सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रम,
ङ. विविध समारोह,
च. स्पीक मैके इत्यादि द्वारा

यह प्रयास स्पष्ट तौर पर दिखता है। भाषा, लोकनृत्य, कला और संस्कृति को संरक्षित करने एवं बढ़ावा देने के लिये सरकारी स्तर पर प्रारंभ की गई योजनाएँ :

केंद्रीय संस्कृति मंत्रालय ने आदिवासियों की भाषा, लोकनृत्य, कला और संस्कृति को संरक्षित करने एवं बढ़ावा देने के लिये कई योजनाएँ शुरू की हैं। भारत सरकार ने पटियाला, नागपुर, उदयपुर, प्रयागराज, कोलकाता, दीमापुर और तंजावुर में क्षेत्रीय सांस्कृतिक केंद्र (Zonal Cultural Centres- ZCCs) स्थापित किये हैं। केंद्रीय संस्कृति मंत्रालय के तहत ये ZCCs लोक/जनजातीय कला और संस्कृति को बढ़ावा देने के लिये कई योजनाएँ लागू कर रहे हैं। क्षेत्रीय सांस्कृतिक केंद्रों द्वारा प्रारंभ की गईं योजनाएँ:

युवा प्रतिभाशाली कलाकारों को पुरस्कार:

'युवा प्रतिभाशाली कलाकार' योजना का प्रारंभ विशेष रूप से दुर्लभ कला रूपों के क्षेत्र में युवा प्रतिभाओं को प्रोत्साहित करने और पहचानने के लिये किया गया है। इस योजना के अंतर्गत 18-30 वर्ष आयु वर्ग के प्रतिभाशाली युवाओं को चुना जाता है और उन्हें 10,000/- रुपए का नकद पुरस्कार दिया जाता है।

गुरु शिष्य परंपरा:

यह योजना आने वाली पीढ़ियों के लिये हमारी मूल्यवान परंपराओं को प्रसारित करने की परिकल्पना करती है। शिष्यों को कला के उन स्वरूपों में प्रशिक्षित किया जाता है जो दुर्लभ और लुप्तप्राय हैं। इस कार्यक्रम के अंतर्गत क्षेत्र के दुर्लभ और लुप्त हो रहे कला रूपों की पहचान की जाती है और गुरुकुलों की परंपरा में प्रशिक्षण कार्यक्रमों को पूरा करने हेतु प्रख्यात प्रशिक्षकों का चयन किया जाता है। इस योजना में गुरु को 7,500 रुपए, सहयोगी को 3,750 रुपए और शिष्य को 1,500 रुपए मासिक पारिश्रमिक के तौर पर छह महीने से लेकर अधिकतम 1 वर्ष की अवधि तक दिये जाएंगे।

रंगमंच कायाकल्प:

इस कार्यक्रम के अंतर्गत स्टेज शो और प्रोडक्शन आधारित वर्कशॉप सहित थिएटर गतिविधियों को बढ़ावा देने के लिये प्रति शो 30,000 रुपए का मानदेय भुगतान किया जाता है। इन समूहों को इनकी साख के साथ-साथ इनके द्वारा प्रस्तुत प्रोजेक्ट की योग्यता के आधार पर अंतिम रूप दिया जाएगा।

अनुसंधान और प्रलेखन:

इस कार्यक्रम का उद्देश्य संगीत, नृत्य, रंगमंच, साहित्य, ललित कला आदि के माध्यम से क्षेत्रीय लोक कला, आदिवासी और शास्त्रीय संगीत सहित लुप्त दृश्य और प्रदर्शन कला रूपों को बढ़ावा देना और उनका प्रचार करना है। राज्य सांस्कृतिक विभाग के परामर्श से कला को अंतिम रूप दिया जाता है।

शिल्पग्राम:

ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले कारीगरों को डिज़ाइन के विकास और विपणन सहायता के लिये संगोष्ठियों, कार्यशालाओं, प्रदर्शनियों, शिल्प मेलों का आयोजन कर क्षेत्र की लोक कला, आदिवासी कला और शिल्प को बढ़ावा देना।

ऑक्टेव (सप्तक) (Octave):

इस कार्यक्रम के तहत उत्तर-पूर्व क्षेत्र की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को बढ़ावा देने हेतु प्रचार प्रसार करना है जिसमें आठ राज्य- अरुणाचल प्रदेश, असम, मेघालय, मिज़ोरम, सिक्किम, नगालैंड, मणिपुर और त्रिपुरा शामिल हैं।

राष्ट्रीय सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रम: (National Cultural Exchange Programme-NCEP):

इसे क्षेत्रीय सांस्कृतिक केंद्रों की जीवनरेखा कहा जा सकता है। इस योजना के तहत सदस्य राज्यों में कला प्रदर्शन, प्रदर्शनियाँ, यात्रा आदि से संबंधित विभिन्न उत्सव आयोजित किये जाते हैं। अन्य क्षेत्रों/राज्यों के कलाकारों को इन कार्यक्रमों में भाग लेने के लिये आमंत्रित किया जाता है। देश के अन्य हिस्सों में आयोजित होने वाले समारोहों में कलाकारों को भाग लेने हेतु सुविधा प्रदान की जाती है। क्षेत्रीय सांस्कृतिक केंद्र भी सदस्य राज्यों के प्रमुख त्योहारों में भाग लेते हैं, इन त्योहारों के दौरान अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं जहाँ बड़ी संख्या में दर्शकों को अन्य क्षेत्रों के कला रूपों का आनंद लेने और समझने का मौका मिलता है। ये त्योहार हमारे देश की विभिन्न संस्कृतियों को समझने का

अवसर प्रदान करते हैं। साहित्य अकादमी, ललित कला आकादेमी, संस्कृति मंत्रालय जो कि संस्कृति मंत्रालय के तहत एक स्वायत्त संगठन है, विशेषकर लोक और आदिवासी भाषाओं के संरक्षण और संवर्द्धन को बढ़ावा देता है।

स्पीक मैके : यह एक गैर लाभकारी संस्था है। जो भारतीय शास्त्रीय संगीत, कला, लोकाभिव्यक्ति इत्यादि को बढ़ावा देने के लिए भारत भर के अकादमिक संस्थाओं में कार्यक्रम आयोजित करता है।

विश्वविद्यालय : भारत के कई विश्वविद्यालय समय-समय पर सेमिनार, कार्यक्रम इत्यादि आयोजित करते हैं।

संगीत समारोह : कई मंदिर, संस्थान, संस्था, न्यास, व्यक्तिगत प्रयास से कलाओं को बढ़ाने के निमित्त प्रयास रत हैं।

बोध प्रश्नः-

प्रश्न 1. लोक साहित्य संरक्षण की आवश्यकता क्यों है?

.....
.....
.....
.....
.....

प्रश्न 2. लोक साहित्य संरक्षण में आने वाली समस्याओं पर प्रकाश डालिये।

.....
.....
.....
.....
.....

नीचे दिए गए कथनों में से कुछ सही हैं कुछ गलत उपर्युक्त चिन्ह लगाकर स्पष्ट कीजिए।

क. लोक साहित्य संरक्षण अत्यंत सरल कार्य है। ( )

ख. प्रायः सुदूर ग्रामीणवर्ती क्षेत्र के लोग संकोची प्रवृत्ति के होते हैं।( )

9.7 लोक साहित्य संग्रहकर्ता के उपादान

डा. कृष्ण देव उपाध्याय ने लोक साहित्य संग्रह हेतु दो प्रकार के साधनों की चर्चा की है- 1. आंतरिक साधन 2. बाह्य साधन1। आंतरिक साधन में उन्होंने लोक साहित्य प्रेमी के लिए कुछ गुणों की चर्चा की है, जिनमें ग्राम्य जनता से तादाम्यीकरण, सहानुभूति, अनुसंधान चातुरी, तथ्यों की भली भाँति परख, स्थानीय शब्दों का प्रयोग, यथा श्रुतम् तथा लिखतम्, संग्रह की प्रमाणिकता, विभिन्न पाठों का संग्रह तथा बाह्य साधनों में नोट बुक, पैन, पेन्सिल, कैमरा रिकॉर्डिंग

मशीन, फिल्म निर्माण इत्यादि की चर्चा की है। इन साधनों की विस्तार से चर्चा करने पर ही हम संग्रह की कठिनाइयों और उसकी निराकरण की दिशा में आगे बढ़ सकेंगे।

संकलन कर्त्ता के अपेक्षित गुण अथवा विशेषताएँ

1.विषय बोध- संग्रह कर्त्ता के मनोमस्तिष्क में विषय प्रवेश का एक स्पष्ट खाका होना चाहिए। उसे क्षेत्र विशेष की आवश्यक जानकारी होनी चाहिए ताकि वह उपयुक्त स्थल विशेष तक पहुँचकर लोक साहित्य को जुटा सके।

2.जिज्ञासा- अनुसंधित्सु को जिज्ञासु होना अत्यंत आवश्यक है। जिज्ञासा उसे अभीप्सित लोक साहित्य की विविध विधाओं के प्रति आकर्षित करती है और वह पूर्ण मनोयोग से तथ्यों का संकलन करता चलता है।

3.दूरदृष्टि- संकलन कर्त्ता को अपने काम में निपुण होने के साथ-साथ दूर दृष्टि रखने वाला भी होना चाहिए। यह दृष्टि ही उसे संकलित तथ्यों को विश्लेषित करने में सहायता प्रदान करती है और स्वयं ही अनावश्यक व कम उपयोगी तत्व व छाँट लेता है।

4.आत्मानुशासन- संकलन कर्त्ता को लोक साहित्य के मौलिक स्वरूप को प्राप्त करने के लिए कई व्यक्तियों, संस्थानों से सम्पर्क करना पड़ता है। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उसे अपना काम करना होता है। ऐसी स्थिति में झुंझलाहट या क्रोध उसके कार्य में बाधा उपस्थित कर सकता है। उसे यथासंभव अनुशासित रहकर मृदु भाषी व्यक्तित्व का परिचय देना ही होता है।

5.ईमानदारी- संकलन कर्त्ता को आलस्य या प्रमाद वश स्वयं जानकारी इकट्ठी न कर दूसरे पर आधारित रहना घातक होता है। ऐसी स्थिति में उसके अनुसंधान की दिशा और स्तर पर प्रभाव पड़ सकता है। उसे पूरी निष्ठा और ईमानदारी के साथ तथ्यों को संकलित और विश्लेषित करना चाहिए।

6.वस्तु निष्ठता- संकलन कर्त्ता किसी पूर्वाग्रह से मुक्त होना चाहिए। उसे लोक मानस को समझते हुए उनकी आस्थाओं, विश्वासों और मान्यताओं का सम्मान करना चाहिए और बिना किसी दुराग्रह के उनकी कृतियों को यथा तथ्य स्वीकार कर लेना चाहिए।

7.निर्भीकता- अनुसंधित्सु को निर्भीक होना चाहिए और किसी भी दुर्गम भौगोलिक अथवा तात्कालिक परिस्थिति में आत्मिक संतुलन का परिचय देना चाहिए।

8.धैर्यवान एवं भ्रमणशील- अनुसंधित्सुको कई बार ऐसे व्यक्तियों या स्थितियों का सामना करना पड़ता है जो दुराग्रह से ग्रस्त होते हैं। ऐसी स्थिति में उसे धैर्य, विवेक और सहनशीलता का परिचय देना होता है। अन्यथा वह अपने कार्य में सफल नहीं हो पायेगा। उसे अपने अनुसंधान के लिए अनेक स्थलों की खाक छाननी पड़ सकती है। इसलिए उसे भ्रमण प्रिय होना भी जरूरी है।

9.समयनिष्ठ- अनुसंधान कर्त्ता को समय का पाबंद होना चाहिए। लोक गीत, लोक कथा अथवा लोक गाथा को प्राप्त करने के लिए उन्हें जिस व्यक्ति से मिलना है उसके द्वारा निर्धारित समय पर पहुँचने पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। प्रभावित

व्यक्ति उसे पूरी सहायता देने हेतु तत्पर हो सकता है। समयबद्ध होना यदि अनुसंधित्सु के व्यवहार का अंग बन जाये तो वह अपना कार्य निर्धारित समय सीमा पर पूरा कर सकता है।

10.व्यवहार कुशल- व्यवहार कुशलता अन्यवेषक के लिए अनिवार्य है। विनम्र और वाकपटु व्यक्ति अजनबी स्थान और व्यक्तियों के मध्य भी घुलमिल जाता है और अपने लिए उपादेय सामग्री ले लेता है। उसकी व्यवहार कुशलता ही सामने वाले के मन पर किसी प्रकार की चोट पहुँचाये बिना मन्तव्य को पूरा कर जाती है।

11.परिश्रमी और संघर्षशील- परिश्रमी और संघर्षशील व्यक्ति ही जोखिम उठा सकता है और अध्ययनोपयोगी सामग्री को इकट्ठा कर सकता है। गढ़वाल और कुमाऊँ का अधिकांश भूभाग बीहड़ पहाडियों में है जहाँ आवागमन के साधन तक उपलब्ध नहीं हैं। यहाँ पहुँचना एक टेठी खीर है। केवल संघर्षशील व्यक्ति ही ऐसे स्थानों में जाकर लोक साहित्य की सामग्री उपलब्ध कर सकते हैं।

12.अध्यवसायी- एक सफल अन्वेषण कर्त्ता को अध्यवसायी होना चाहिए। यही गुण उसे स्थान विशेष के इतिहास, भूगोल, धर्म, दर्शन, संस्कृति को समझने में सहायक सिद्ध होता है।

13.आधुनिक तकनीकी का जानकार- आज विज्ञान का युग है। अनेक संचार माध्यमों ने लोक साहित्य की सामग्री सुलभ करने के अनेक साधन उपलब्ध कराये हैं। अनुसंधित्सु को फोटोग्राफी, वीडियोग्राफी, टंकण और इंटरनेट की जानकारी आवश्यक है। ध्वनियों को यथावत् संरक्षित करने के लिए ऑडियों विजुअल संसाधनों के प्रयोग से बहुत सहायता मिलती है। रिकॉर्ड की गई सामग्री को व्यक्ति बाद में भी बार-बार सुनकर उसे सही-सही लिपिबद्ध कर सकता है।

बोध प्रश्नः-

प्रश्न 3. लोक साहित्य संरक्षण कर्ता में कौन-कौन से गुण होने चाहिए?

.....
.....
.....
.....
.....

प्रश्न 4. संग्रह कर्ता को आधुनिक कौन सी तकनीक का जानकार होना चाहिए?

.....
.....
.....
.....
.....

नीचे दिए गए कथनों में से कुछ सही हैं कुछ गलत उपर्युक्त चिन्ह लगाकर स्पष्ट कीजिए।

ग. संकलन कर्त्ता किसी पूर्वाग्रह से मुक्त नहीं होना चाहिए। ( )

घ. एक सफल अन्वेषण कर्त्ता को अध्यवसायी होना चाहिए। ( )

9.8 लोक साहित्य संग्रह की समस्याओं के समाधान

लोक साहित्य संग्रह कर्ता की समस्या के लिए कुछ समाधान निम्नवत् हैं -

1. क्षेत्र विशेष की परम्पराओं का ज्ञान- इस कार्य को करने वाले के पास लोक क्षेत्र की परम्पराओं का पूर्व ज्ञान आपेक्षित है। यह आवश्यक है कि उसे यहाँ की भाषा पर अच्छा अधिकार हो। उसके अन्दर समाज विशेष से तादात्म्य स्थापित करने की अनूठी क्षमता होनी चाहिए। इसलिए यहाँ की आस्था, विश्वास, खान-पान, रीति-रिवाज का जानना अनुसंधित्सु के लिए अनिवार्य है। यही कारण है कि इस अंचल विशेष का अनिवासी इस कार्य को करने में बेहद कठिनाई महसूस करता है।

2. क्षेत्रीय भाषा का ज्ञान- अनुसंधित्सु इतिहास, समाज और पूर्व परम्परा का ज्ञान तो होना ही चाहिए, साथ ही साथ उसे बहुभाषाविद् और लोक बोलियों का जानकार भी होना चाहिए।

3. तादात्म्यीकरण का गुण- अनुसंधित्सु को व्यवहारिक और समाज में घुल-मिल जाने वाला होना चाहिए, क्योंकि इसके अभाव में वह समाज के अलग-अलग वर्गों से लोक गीतों के विविध प्रकार को ग्रहण करने में असमर्थ रहेगा। यह तो सर्वविधित है कि लोक साहित्य सम्बन्धी सामग्री समाज के विभिन्न वर्गों के पास होती है। कुछ गाथाएँ और गीत समाज की अस्पृश्य समझी जाने वाली जातियों के पास हैं तो कुछ घरेलू, अपढ़ महिलाओं के कंठ में सुरक्षित हैं। अनुसंधित्सु के पास वह व्यवहारिक कौशल होना चाहिए ताकि वह इन सभी में असानी से घुल-मिल जाए और लोक साहित्य संग्रह कर सके। डा. कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार ''लोक साहित्य के प्रेमी के लिए यह आवश्यकहै कि जिस देश या प्रदेश को वह अपने कार्य का क्षेत्र बनाए वहाँ की जनता से निकटतम सम्बन्ध स्थापित करे। अपने का महान् समझना अथवा जिन लोगों के बीच कार्य करना है, उनको सभ्य या शिक्षित बनाने की भावना घातक सिद्ध होती है। इसलिए यह आवश्यक है कि संग्रही अपने वैभव तथा सुन्दर एवं बहुमूल्य वेश-भूषा का प्रदर्शन उनके सामने न करे।''[2] सोफिया बर्न के अनुसार ''सुष्ठु तथा सुन्दर व्यवहार, सज्जनतापूर्ण बर्ताव और स्थानीय शिष्टाचार के नियमों का पालन करना अनिवार्य है।[3]

4. संग्रहकर्ता को स्थानीय जनता के प्रति सहानुभूति पूर्वक व्यवहार करना चाहिए। स्थानीय विश्वासों, प्रथाओं तथा अंधपरम्पराओं के लिए सम्मान प्रदर्शित करना भी जरूरी है अन्यथा वे लोग आत्मीयता की भावना नहीं रखेंगे। डा. कृष्ण देव उपाध्याय ने अपना तर्क कुछ इस प्रकार रखा है-''यदि हम उनकी प्रथाओं का आदन न करेंगे तो वे लोग आत्मीयता की भावना नहीं रखेंगे। उदाहरण के लिए देहरादून जिले के जौनसार-भावर क्षेत्र में बहुपति प्रथा आज भी प्रचलित है। यदि किसी कुटुम्ब में पाँच भाई हैं तो उन सब की एक ही पत्नी होगी, जो पाँ को अपना पति समझेगी। शास्त्रों ने बहुपतित्व-प्रथा को गर्हित बतलाया है। यदि संग्रहकर्ता अपने कार्य के उद्देश्य से इस प्रदेश में जाय और वहाँ के लोगों से शास्त्र-विरुद्ध इस प्रथा की निन्दा करे तो उसका मिशन कदापि सफल नहीं हो सकता है। इस बात को गाँठ में बाँध लेना चाहिए कि

जंगली तथा असभ्य जातियों के विश्वास और प्रथाएँ हमें कितनी ही अद्भुत तथा निन्दित क्यों न मालूम हों, परंतु स्थानीय निवासियों की दृष्टि में वे तथ्यपूर्ण और तर्कपूर्ण है। अतः आवश्यकता इस बात कि है कि उनके दृष्टिकोण से ही उनकी प्रथाओं को समझने का प्रयास किया जाये।''[4]

4. अनुसंधित्सु की दृष्टि निष्पक्ष व वस्तुनिष्ठ होनी चाहिए। कभी-कभी लोक गीतों या लोक कथाओं के अनेक प्रारूप प्राप्त होते हैं। प्राचीन हस्तलिखित पोथियों और ग्रथों में क्षेपक भी होते हैं। इसमें संग्रह कर्ता की वस्तुनिष्ठ दृष्टि प्रमाणिकता का अनुमान कर सकती हैं। कहीं-कहीं लोक साहित्य किसी परिवार की अमूल्य धरोहर के रूप में भी संरक्षित हो सकता है। ऐसी स्थिति में अनुसंधित्सु के पास उसकी छायाप्रति प्राप्त करने की सुविधा भी होनी चाहिए।

5. संग्रहकर्ता जिस जगह से सामग्री एकत्र करता है उस क्षेत्र और व्यक्ति विशेष के विषय में भी जानकारी रखना आवश्यक है क्योंकि सामग्री की यथार्थता, भाषिक ज्ञान और ऐतिहासिकता की जाँच-पड़ताल बाद में की जा सकती है।

6. अधिकांश लोक साहित्य मौखिक या श्रुत परम्परा में ही जीवित रहता है। ऐसे लोक साहित्य का लिप्यंकन अत्यंत कठिन कार्य है, क्योंकि जैसे सुनें ठीक वैसा ही लिखे जाने में बेहद कठिनाई है। इसलिए जो उस क्षेत्र की बोली को जानता हो या उस क्षेत्र विशेष की बोली का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन करने में समर्थ हो, वही शुद्ध रूप से लिप्यंकन कर सकता है। कभी-कभी व्याकरणिक रूप से शुद्ध करने की प्रवृत्ति उस साहित्य के मूल रूप को भी बाधित करती है। अधिकांशतः क्षेत्रीय बोलियों के शब्द उनका ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत उच्चारण विशिष्ट स्थितियों और व्यापारों का बोधक होता है। इसकी जानकारी के अभाव में भी लोक साहित्य का संकलन भ्रामक और त्रुटिपूर्ण हो जाता है। इसलिए यह अवधान योग्य है कि लोक साहित्य को जैसा कहा या जैसा सुना जाता है उसे वैसे ही संकलित करना चाहिए।

7. उच्चारण विशेष के आरोह-अवरोह को टेपरिकॉर्डर की सहायता से यथावत संरक्षित किया जा सकता है तथा हस्तलिखित रूपों को फोटो कॉपी द्वारा संरक्षित किया जा सकता है। संग्रह कर्ता को थोड़ा बहुत फोटोग्राफी का ज्ञान भी होना चाहिए, ताकि वस्तु विशेष को फोटोग्राफी द्वारा समझाया जा सके।

8. लोक गीतों की अपनी विशिष्ट लय और धुन होती है। कोई भी लोक गीत अपने विशिष्ट अवसर पर विशिष्ट धुन और लय के साथ गाया जाता है। इसलिए इनकी स्वर लिपि का निर्माण कर इनके सौदर्य को संरक्षित करना भी लोक साहित्य के संग्रह कर्ता का कर्तव्य बन जाता है।

9. ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्रियाँ पर्दा करती हैं और वे किसी अनजान व्यक्ति के सामने आकर गा नहीं सकतीं या परम्परा से प्राप्त कथाओं को बाँट नहीं पाती। ऐसे गीतों को एकत्रित करना अत्यंत कठिन हो जाता है। साथ ही उत्तराखण्ड में कुछ ऐसे गीत हैं जो विशेष समय में ही गाये जाते हैं इन्हें अतिरिक्त समय में गाना अमंगलकारी माना जाता है। जैसे 'जागर गीत' विशेष अवसरों पर ही सुनायी पड़ते हैं। इसीप्रकार मांगल गीत, चौमासे में गाये जाने वाले बाजूबंद विशेष मौको और मौसम में गाये जाते हैं। इन गीतों को संकलन करते समय अनुसंधित्सु को चाहिए की वह प्रत्येक मौसम और अवसर विशेष पर जाकर इनका संग्रह करें।

10. सोफिया बर्न मानती हैं कि लोक साहित्य के लिए विशिष्ट अनुसंधान चार्तुय होना चाहिए। कुछ प्रथाएँ केवल पुरुष पालन करते हैं और कुछ विधि विधान स्त्रियों द्वारा सम्पादित होता है। यही नहीं कुछ परम्पराएँ विशिष्ट कुलों की होती हैं।

इन्हें उन्हीं से सम्पर्क साध करके जाना जा सकता है। इस विश्लेषण की क्षमता अनुसंधित्सु में अनिवार्य है। सोफिया का मानना है-''युवती स्त्रियाँ प्रेम-गीत, टोटका, शकुन शास्त्र तथा भूत-दूत के विषय में प्रमाणभूत है। बूढ़ी स्त्रियाँ शिशु-गीत, लोक-कथा तथा जन्म, मृत्यु और बीमारी से सम्बन्धित विधि-विधानों की अधिक जानकारी रखती हैं। संग्रही को पशु पक्षियों के विषय में किसी शिकारी से बातचीत करनी चाहिए, लकड़ीहारे से वृक्षों के विषय में और गृहणी से रसोई बनाने और कपड़ों को साफ करने के सम्बन्ध में पूछ-ताछ करनी चाहिए।''[5]

11. तथ्यों को जाँच परख कर ही स्वीकार करना चाहिए। किसी वस्तु विशेष के अभाव में साक्षीभूत प्रमाणों को लिपिबद्ध कर लेना चाहिए। किसी तथ्य को केवल जानकारी के अभाव में अस्वीकृति नहीं देनी चाहिए।

12. भारत के कई प्रदेश बीहड़, दुर्गम स्थानों पर हैं अतः अनुसंधित्सु को पर्याप्त साहस, धैर्य और जीवट का परिचय देना होगा क्योंकि अधिकांश प्रदेशो में यातायात की सुविधा भी नहीं है।

13. यह अत्यंत आवश्यक है कि संग्रह कर्ता को स्थानीय भाषा के शब्दों में ही लोक साहित्य का संग्रह करना चाहिए। लोक गीत और लोक कथाओं के संग्रह में यह अत्यंत वांछनीय है। यही नहीं स्थल विशेष की प्रथाओं और रीति-रिवाजों को लिपिबद्ध करते समय स्थानीय परिभाषिक शब्दों का ही प्रयोग करना चाहिए। यह भी संभव है कि उनके पर्यायवाची या समानार्थी शब्द हिन्दी में उपलब्ध ही न हो।

14. यह भी संभव है कि एक ही लोक गीत या लोक गाथा के विभिन्न पाठउपलब्ध हों। संग्रह कर्ता को उनके अलग-अलग रूपों का संग्रह करना वांछनीय है। कोई भी लोक गाथा या गीत राज्यों या प्रातों में यत्किंचित परिवर्तन के साथ उपलब्ध हो सकती है। उदाहरण के लिए राजूला मालूशाही के कुमाऊँ और गढ़वाल प्रांत में अनेक पाठ उपलब्ध हैं। इसी प्रकार अनेक लोक गाथाएँ कुमाऊँ और गढ़वाल में स्थानीय पुट लेकर थोड़ी बहुत परिवर्तित हुई हैं। इसीप्रकार डा. कृष्ण देव उपाध्याय ने 'आल्हा' की बुन्देलखंडी, कन्नौजी और भोजपुरी अनेक पाठों का उल्लेख किया है। राजा गोपी चंद और भरथरी की लोक गाथा भी समस्त उत्तरी भारत में अनेक पाठों में उपलब्ध है। ढोला मारू की प्रेम कथा भी राजस्थान से लेकर भोजपुरी तक विभिन्न गायकों द्वारा स्थानीय परिवर्तन के साथ गायी जाती है। डा. चाइल्ड ने भी स्कॉटिश लोक गीतों को अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ'इंग्लिश एण्ड स्कॉटिश पोपुलर बैलेड्स' में विभिन्न पाठों के साथ उपलब्ध कराया है। पं.रामनरेश त्रिपाठी ने भी अपनी पुस्तक 'ग्राम गीत' में 'भगवती देवी' शीर्षक गीत को तीन चार पाठों में उपलब्ध कराया है।

15. आज आधुनिक पीढ़ी अपनी लोक परम्पराओं, लोक संस्कृति और साहित्य के प्रति उदासीन होती जा रही है। वे लोग इसे पिछड़ेपन का चिन्ह मानने लगे हैं इसलिए इनके प्रति अभिरूचि जगाना और विलुप्त होते लोक साहित्य को बचाना हमारा पहला कर्तव्य बन जाता है।

प्रश्न

नीचे गए कथनों में से कुछ सही हैं कुछ गलत उपर्युक्त चिन्ह लगाकर स्पष्ट कीजिए।

ड. अधिकांश लोक साहित्य मौखिक या श्रुत परम्परा में ही जीवित रहता है। ( )

च. अनुसंधित्सु की दृष्टि निष्पक्ष व वस्तुनिष्ठ होनी चाहिए। ( )

9.9 सारांश

लोक साहित्य के संरक्षण की समस्या व समाधान के विषय में अवगत होते हुए पग-पग पर प्राप्त समस्याओं पर विचार किया गया है। लोक गीतों के संग्रह व संरक्षण करते समय संग्रह कर्ता को लोक गायकों का अभाव, पर्दे की प्रथा, पुनरावृत्ति में असमर्थता, विशेष समय पर ही गायन का क्रम, ग्रामीणों की संकोची मनोवृत्ति, पहाड़ के दुर्गम प्रदेशों में यातायात के साधनों के अभाव का सामना करना पड़ता है। एक लगनशील अनुसंधित्सु को अपूर्व धैर्य का परिचय देना पड़ता है। एक अच्छे संकलन कर्ता में विषय बोध, जिज्ञासा, दूरदृष्टि, आत्मानुशासन, ईमानदारी, वस्तु निष्ठता, निर्भीकता, धैर्यवान एवं भ्रमणशील, समयनिष्ठ, व्यवहार कुशल, परिश्रमी और संघर्षशील, अध्यवसायी सदृश गुणों के साथ-साथ उसे आधुनिक तकनीकी का जानकार भी होना चाहिए।

9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1. इकाई 9 देखें

उत्तर 2. इकाई 9 देखें

उत्तर 3. इकाई 9 देखें

उत्तर 4. इकाई 9 देखें

2. सही गलत उत्तर

क. (ग्)

ख. (√)

ग. (ग्)

घ. (√)

ड. (√)

च. (√)

9.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.लोक साहित्य की भूमिका, लोक साहित्य का संकलन, पृ0 3-8

2.वही, पृ0 3

3.A kindly simple genial manner, much patience in listening and quick perception of and compliance with the local rules of etiquette and courtesy are needful- Sophiya Burn.kउद्धृतांश वही, पृ0 3

4.वही, पृ0 3

5.Young women are the best authority"s on love songs, charms, omens, and simple methods of divination, old women on nursery songs and tales and all the lore connected with birth, death and sickness.k~ One must talk to the hunter about birds and beasts, to the woodcutter about trees and to the housewife about baking and washing.- Sophiya Burn, oxford, page.8

9.12 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.लोक साहित्य की भूमिका, डा. कृष्णदेव उपाध्याय, साहित्य भवन, प्रा0लि0 इलाहाबाद

2.लोक संस्कृति की रूप रेखा, डा. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद

3. कुमाउनी लोक संस्कृति के विविध आयाम, अनिल कार्की, समय साक्ष्य प्रकाशन, देहरादून

9.13 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. लोक साहित्य संरक्षण की समस्याएँ कौन-कौन सी हैं?

प्रश्न 2. लोक साहित्य संग्रह में आने वाली समस्याओं के समाधान को प्रस्तुत कीजिए।